कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास
को समर्पित

वर्ष 56 अंक : 5 मार्च 2010 मूल्य : 10 रुपये

कृषि और जलवायु परिवर्तन

जागो ग्राहक जागो

अपना बैंकनोट पहचानिए

आगे से देखने पर

1 रजिस्टर के ज़रिए देखने पर

नोट के वॉटरमार्क विंडो के बगल में ऊर्ध्व पट्टी के बीच में आगे तथा पीछे दोनों तरफ छपे फूलवाले डिजाइन में "500" का अंक है। अंक का आधा हिस्सा अगली तरफ और आधा हिस्सा पिछली तरफ छपा है। छपे हुए दोनों हिस्सों में बिल्कुल सटीक 'बैक टू बैक रजिस्ट्रेशन' है, जिससे नोट को जब रोशनी में देखा जाता है तो यह अंक एक दिखाई देता है।

2 ऑप्टिकल वेरिएबल इंक (ओ वी आई)

नोट को लिटाकर रखने पर अंक "500" का रंग हरा दिखाई देता है, लेकिन उसे तिरछा करने पर इसका रंग बदलकर नीला हो जाता है।

3 गुप्त छवि

ऊर्ध्व पट्टी में एक गुप्त छवि है, जिसके कारण बैंक नोट को आंख के स्तर पर क्षैतिज रखने पर अंक "500" दिखाई देता है।

4 पहचान चिह्न

उत्कीर्ण छपाई के साथ एक वृत्त है, जिसे आप छूकर महसूस कर सकते हैं। यह नेत्रहीन व्यक्तियों को मूल्यवर्ग पहचानने में मदद करता है।

5 वॉटरमार्क

इस हिस्से में महात्मा गांधी का चित्र, बहु दिशाई रेखाएं तथा एक इलेक्ट्रोलाइट चिह्न है, जिन्हें बैंकनोट को रोशनी के आगे रखकर स्पष्ट देखा जा सकता है।

6 उत्कीर्ण छपाई

बैंकनोट पर महात्मा गांधी का चित्र, रिज़र्व बैंक की मुहर, आश्वासन तथा वचन कथन, बाईं ओर अशोक स्तम्भ का शिलालेख, भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर के हस्ताक्षर तथा नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए पहचान चिह्न उत्कीर्ण छपाई में हैं जिन्हें छूकर महसूस किया जा सकता है।

7 सुरक्षा धागा

इसमें एक 3/00 मिमी चौड़ा सुरक्षा धागा मौजूद है जिसमें "भारत" तथा "RBI" अंकित है, जिसे अलग-अलग कोणों से देखने पर यह हरे से नीला रंग बदलता है। यह उल्टी तरफ से देखने पर पीला चमकेगा तथा अल्ट्रावॉयलेट रोशनी में अगली तरफ का पाठ चमकेगा। नोट को रोशनी के आगे रखने पर यह धागा पीछे की तरफ से एक सीधी रेखा जैसा दिखाई देगा।

8 अतिसूक्ष्म अक्षर

महात्मा गांधी के चित्र तथा ऊर्ध्व पट्टी के बीच के हिस्सों में "RBI" अक्षर तथा अंक "500" मौजूद है, जिन्हें मैग्नीफाइंग ग्लास की मदद से देखा जा सकता है।

अधिक जानकारी के लिए कृपया यहां देखें
htt:\www.rbi.org.in/scripts/ic_banknotes.aspx

जनहित में जारी

भारतीय रिज़र्व बैंक
RESERVE BANK OF INDIA
Website : www.rbi.org.in

उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय
उपभोक्ता मामले विभाग, भारत सरकार
कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 वेबसाइट: www.fcamin.nic.in

KH-3/10/1

ग्रामीण विकास मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका

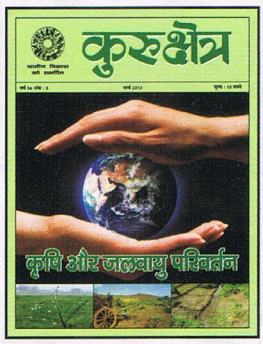

कुरुक्षेत्र

वर्ष : 56 ★ मासिक अंक : 5 ★ पृष्ठ : 48 ★ फाल्गुन–चैत्र 1932 ★ मार्च 2010

प्रधान संपादक
नीता प्रसाद

वरिष्ठ संपादक
कैलाश चन्द मीना

संपादक
ललिता खुराना

संपादकीय पत्र–व्यवहार
वरिष्ठ संपादक,
कमरा नं. 655, 'ए' विंग,
गेट नं. 5, निर्माण भवन
ग्रामीण विकास मंत्रालय
नई दिल्ली–110 011
दूरभाष : 23061014, 23061952
फैक्स : 011–23061014, तार : ग्राम विकास
वेबसाइट : Publicationsdivision.nic.in
ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

संयुक्त निदेशक
जे.के. चन्द्रा

व्यापार प्रबंधक
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516
ई–मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

आवरण एवं सज्जा
संजीव सिंह और रजनी दवे

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

इस अंक में

जलवायु परिवर्तन से निबटने को हम हैं तैयार
शंभूनाथ यादव 3

कैसे बचाएं कृषि को ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से
डॉ. दीप्ति विश्वास 10

बदलती जलवायु का खेती पर प्रभाव
जितेन्द्र द्विवेदी 15

बढ़ता तापमान घटती पैदावार
मयंक श्रीवास्तव 23

स्वरोजगार
फल-सब्जी परिरक्षण स्वरोजगार का उत्तम साधन
डॉ. शारदा एवं डॉ. के. गीता 29

स्वास्थ्य-चर्चा
स्वास्थ्य के लिए उपयोगी पपीता
डॉ. अनामिका प्रकाश 35

खेतीबाड़ी
उड़द एक उपयोग अनेक
डॉ. वीरेन्द्र कुमार 38

सफलता की कहानी
छाई खेतों में हरियाली - आई गांवों में खुशहाली
हरि विश्नोई 46

कुरुक्षेत्र की एजेंसी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में व्यापार प्रबंधक, (वितरण एवं विज्ञापन) प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए सहायक विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। दूरभाष : 26105590, फैक्स : 26175516

कुरुक्षेत्र में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय

जाहिर तौर पर जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ा है तो अप्रत्यक्ष प्रभाव आय की हानि और अनाजों की बढ़ती कीमतों के रूप में परिलक्षित हो रहा है। एक अनुमान के अनुसार आने वाले वर्षों में जलवायु बदलावों के चलते करीब पांच करोड़ भारतीय प्रभावित होंगे। इनमें से अधिकतर पर्यावरण शरणार्थी के रूप में शहरों की ओर पलायन करेंगे।

विश्व बैंक की जलवायु परिवर्तन के संबंध में दी गई रिपोर्ट के अनुसार –'ग्लोबल वार्मिंग समस्या की बढ़ती हुई गंभीरता को देखते हुए भारत को ऐसे कदम उठाने चाहिए जिससे वह इस कारण उत्पन्न गंभीर दुष्परिणामों के प्रभाव को कम कर सके। ग्रीनहाऊस गैस सन् 2040 तक दुगुना होने और इस सदी के अंत तक तीन गुना होने की संभावना है। फलस्वरूप तापमान में वृद्धि होगी, अतिवृष्टि, सूखा, बाढ़ जैसी आपदाएं अधिक होंगी, मौसम अनियमित होगा, समुद्र के जलस्तर में वृद्धि होगी। इन सबका प्रभाव भारत में बहुत दूर तक होगा। विशेषज्ञों के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के कारण फसल का उत्पादन कम होगा, बीमारियां फैलेंगी और यह जैव–विविधता में कमी का कारण होगी।'

एक अध्ययन के अनुसार यदि तापमान में एक से चार डिग्री सेल्सियस तक वृद्धि होती है तो भोज्य पदार्थों के उत्पादन में 30 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। कोपेनहेगन में जलवायु परिवर्तन पर आयोजित एक सम्मेलन में कृषि वैज्ञानिक डा.एम.एस. स्वामीनाथन ने भी कहा कि इसके चलते देश में 64 प्रतिशत लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा जिनके जीवनयापन का साधन कृषि है और सबसे बड़ा डर खाद्य सुरक्षा से संबंधित है। उन्होंने कहा कि तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से भारत में 7 मिलियन टन गेहूं के उत्पादन में कमी आएगी जिससे 1.5 बिलियन डॉलर गेहूं का वित्तीय नुकसान होने की संभावना है।

इन तथ्यों के मद्देनजर कहा जा सकता है कि आने वाले समय में ग्लोबल वार्मिंग की समस्या और विकराल रूप धारण कर सकती है। भारत में इसके चलते बाढ़, सूखा और भूस्खलन की घटनाएं बढ़ी हैं जिसके परिणामस्वरूप किसानों के हालात दिन–पर–दिन बिगड़ रहे हैं। ऐसे हालात में वे या तो आत्महत्या करने को मजबूर हो रहे हैं या फिर खेतीबाड़ी से पलायन कर रहे हैं। हालांकि सरकार ने किसानों की आर्थिक सुरक्षा हेतु कई योजनाएं शुरू की हैं जिनके चलते स्थिति में सुधार हुआ है लेकिन भारत जैसे विशाल देश में जहां करोड़ों किसान हैं, ये प्रयास ऊंट के मुंह में जीरे के समान है।

आज जरूरत इस बात की है कि हम खेतीबाड़ी में पर्यावरण–फ्रेंडली तकनीकें इस्तेमाल करें। आधुनिक कृषि में सबसे ज्यादा ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन रसायनिक उर्वरकों द्वारा होता है। ऐसे में ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन कम करने का सबसे प्रभावी माध्यम है जैविक खेती । साथ ही जैविक खेती मिट्टी में कार्बन को भी अवशोषित करती है। ऐसे में जैविक खादों व खेती की विविधता से मिट्टी में कार्बन का उचित अनुपात बना रहता है। जैविक कृषि, स्थायी कृषि, बिना जुताई के कृषि, कृषि वानिकी आदि ऐसी तकनीकें हैं जोकि मिट्टी के क्षरण को रोकती हैं। मिट्टी के क्षरण से कार्बन का नुकसान होता है जो सीधे मिट्टी की उत्पादकता पर प्रभाव डालता है।

हमें चाहिए कि जलवायु परिवर्तन से उत्पन्न चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में कृषि तकनीकों की समीक्षा करें जिससे हमारे किसान जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न कठिनाईयों का सामना करते हुए फसलों का उत्पादन कर सकें और उन्हें समुचित लाभ भी हो। कृषि क्षेत्र में तकनीकी, संस्थागत सुधार एवं नीतियों में संशोधन आज बेहद जरूरी है। साथ ही, समुद्री तटों पर रहने वाले समुदायों की रक्षा हेतु भी उपाय बेहद जरूरी है चूंकि जलवायु परिवर्तन से आने वाले समय में वही लोग सबसे अधिक प्रभावित होंगे।

जलवायु परिवर्तन से निबटने को हम हैं तैयार

शंभूनाथ यादव

जलवायु परिवर्तन का असर भारत ही नहीं पूरे विश्व में पड़ रहा है। स्वाभाविक है कि जब जलवायु परिवर्तन होगा तो किसी न किसी रूप में उसका असर हमारी कृषि पर पड़ेगा और कृषि के प्रभावित होने का मतलब है कि हमारी अर्थव्यवस्था भी प्रभावित होगी। इसीलिए सरकार की कोशिश है कि जलवायु परिवर्तन के खतरों से निबटने के लिए समय रहते विकल्प ढूंढ़ लिया जाए। भारतीय वैज्ञानिक भी इस क्षेत्र में दो कदम आगे निकल गए हैं। उन्होंने किसानों को कई ऐसे नायाब तोहफे देने की तैयारी कर ली है जिसकी वजह से जलवायु परिवर्तन के बाद भी किसान अधिक उपज पैदा कर सकेंगे और देश की अर्थव्यवस्था में अपना योगदान कायम रख सकेंगे।

जलवायु परिवर्तन को लेकर पूरे विश्व में हाहाकार मचा हुआ है। ऐसे में भारतीय वैज्ञानिकों ने नायाब तरीका ढूंढ निकाला है। वे जलवायु परिवर्तन से खेती को बेअसर कराने के लिए पूरी तरह तैयार हैं। भारतीय वैज्ञानिक न सिर्फ मानसून सहित विभिन्न अध्ययनों के लिए उपग्रह विकसित कर रहे हैं बल्कि बाढ़ और सूखे के मद्देनजर नई किस्म की फसलें विकसित कर रहे हैं। यह फसलें बिना पानी के भी तैयार होंगी और बाढ़ में डूबने के बाद भी सड़ेंगी नहीं।

जलवायु परिवर्तन का सबसे अधिक प्रभाव कृषि पर पड़ता है। भारत की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है। ऐसे में जलवायु परिवर्तन हमारी अर्थव्यवस्था के लिए भी खतरा पैदा कर रहा है। वैज्ञानिकों की ओर से पेश की गई रिपोर्ट में इस बात के पुख्ता संकेत मिले हैं कि जलवायु परिवर्तन से खेती के अलावा खेती से जुड़े अन्य आर्थिक साधन भी प्रभावित होंगे। मसलन पशुपालन, मछली पालन आदि। क्योंकि ये भी किसी न किसी रूप में पौधों पर निर्भर हैं।

वर्ष 2005 में आई एक अध्ययन रिपोर्ट में यह बताया गया है कि 1960 के बाद औसत तापमान तीन डिग्री सेल्सियस बढ़ गया है। इसकी वजह से मानसून में उथल–पुथल होगी और कहीं सूखे तो कहीं बाढ़ की स्थिति उत्पन्न होगी, जिसकी वजह से उत्पादन घट सकता है। इतना ही नहीं समुद्र के जलस्तर में एक मीटर बढ़ोतरी की उम्मीद जताई गई। समुद्र के स्तर में वृद्धि होना भी कृषि के लिए हानिकारक है क्योंकि जलस्तर बढ़ने से दक्षिण–पूर्व एशिया में कटाव, डूब आदि का खतरा बढ़ेगा। फिर बाढ़ से कृषि क्षेत्र प्रभावित होंगे। आंकड़े बताते हैं कि बांग्लादेश, भारत और वियतनाम में बाढ़ के कारण भारी संख्या में धान का उत्पादन प्रभावित हुआ है। अकेले भारत में नदियों का जलस्तर तेजी से गिरा है। बारह माह बहने वाली नदियां ठहर–सी गई हैं। जिन नदियों में पानी बचा है, वह काफी गंदा हो चुका है। अकेले गंगा नदी पीने के अलावा खेती के लिए भी लगभग 500 मिलियन लोगों को पानी उपलब्ध कराती है। ऐसे में स्वाभाविक है जब जलस्तर कम होगा तो ये लोग प्रभावित होंगे।

वास्तव में जलवायु परिवर्तन का असर खासतौर से 1950 के बाद औद्योगिक क्रान्ति के दौरान देखने को मिला। जिस तरह से औद्योगिक क्रांति को बढ़ावा मिला और हमने प्राकृतिक संसाधनों का दोहन शुरू किया। नदियों का पानी कंपनियों में पहुंचा। साथ ही कंपनियों से निकलने वाला धुआं और अन्य अवशिष्ट पदार्थ नदियों में मिलता गया। इस तरह जलप्रदूषण धुंआधार बढ़ा। शेष कार्य भूमि के उपयोग में परिवर्तन के कारण से होता है विशेषकर वनों की कटाई से ऐसा होता है। पेड़–पौधों की कटाई कर बस्तियां बसा दी गई तो कहीं फैक्ट्रियां लगा दी गई। औद्योगिक क्रान्ति के बाद से गतिविधि में वृद्धि हुई, जिसके कारण ग्रीन–हाउस गैसों की मात्रा में बहुत ज्यादा वृद्धि हुई। फिर मीथेन, ओजोन, सीएफसी सहित अन्य समस्याएं सामने आई। ऐसा नहीं है कि यह हाल सिर्फ भारत में हुआ बल्कि यह हालात पूरे विश्व में दिखे। यही वजह है कि प्रमुख औद्योगिक देशों में जलवायु परिवर्तन की मार ज्यादा पड़ रही है। स्पष्ट है कि मानवीय गतिविधियों के कारण वातावरण की ग्रीनहाउस गैसों में वृद्धि हुई।

वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसें

ग्रीनहाउस प्रभाव की खोज 1824 में जोसेफ फोरियर द्वारा की गई थी। 1896 में पहली बार स्वेन्टी आरहेनेस द्वारा इसकी मात्रात्मक जांच की गई थी। इसके बाद हम अवशोषण और उत्सर्जन के साथ ही विकिरण द्वारा वातावरण में गर्म गैसों के प्रभाव से भी वाकिफ होने लगे।

यह भविष्यवाणी भी

एक अध्ययन के तहत भविष्यवाणी की गई है कि वर्ष 2050 तक 18 से 35 फीसदी पशु और पौधों की प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी। यह बात 1103 पशु और पौधों के एक नमूने पर आधारित है लेकिन कुछ ही यंत्रवत अध्ययनों ने जलवायु परिवर्तन के कारण जीवों के विलुप्त होने का अनुमान लगाया है। इतना ही नहीं उष्णकटिबंधीय बीमारियों के फैलने की भी आशंका जाहिर की गई है।

जलवायु परिवर्तन का असर

चेरापूंजी में गिरा बारिश का ग्राफ

पूर्वोत्तर का स्कॉटलैंड कहे जानेवाले मेघालय स्थित चेरापूंजी अपनी भारी बारिश की वजह से ही गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकार्ड में दर्ज था, लेकिन अब यह इलाका जलवायु परिवर्तन की चपेट में है। बारिश और गरजते बादल ही सदियों से चेरापूंजी की सबसे बड़ी धरोहर रहे हैं, लेकिन जलवायु परिवर्तन की वजह से यह धरोहर अब धीरे–धीरे उसके हाथों से निकलती जा रही है। दुनिया में सबसे ज्यादा बारिश का रिकॉर्ड बनाने वाला चेरापूंजी अब खुद अपनी प्यास बुझाने में भी नाकाम है। यहां बारिश साल–दर–साल कम होती जा रही है। पांच–छह साल पहले तक यहां सालाना लगभग 1100 मिमी. बारिश होती थी। अब यह आंकड़ा मुश्किल से छह सौ तक पहुंचता है यानी बारिश पहले के मुकाबले लगभग आधी हो गई है। इलाके में बड़े पैमाने पर पेड़ों की कटाई के आरोप लगते रहे हैं। मौसम विभाग के एक अधिकारी डी.के. संगमा की मानें तो लगातार भारी बारिश की वजह से इलाके में लाइम स्टोन यानी चूना पत्थर की चट्टानें नंगी हो गई हैं। उन पर कोई पौधा तो उग नहीं सकता। नतीजतन इलाके से हरियाली तेजी से खत्म हो रही है। बांग्लादेश की सीमा से लगे चेरापूंजी से अब हर साल जाड़े और गर्मियों में पानी की भारी किल्लत हो जाती है। यह विडंबना ही है कि स्थानीय लोगों को अब पीने का पानी खरीदना पड़ता है। एक बाल्टी पानी के लिए छह से सात रुपये देने पड़ते हैं। लंबे अरसे तक यह गांव चेरापूंजी के नाम से जाना जाता रहा, लेकिन बीते साल इसका नाम बदलकर सोहरा कर दिया गया है। पहले इसका नाम ही साहरा था। नाम इस उम्मीद में बदला कि शायद इससे किस्मत भी बदल जाए, लेकिन ऐसा नहीं हो रहा है। चेरापूंजी में बादल और बरसात ही पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। इसका प्राकृतिक सौंन्दर्य पर्यटकों को घंटों बांधे रखने में सक्षम है, लेकिन अब बादल घटते जा रहे हैं और शायद पर्यटक भी। वैसे संगमा का दावा है कि पर्यटक अब भी चेरापूंजी आते हैं। वे कहते हैं कि शिलांग आने वाले पर्यटक चेरापूंजी जरूर आते हैं। पर्यटक आते जरूर हैं, लेकिन उनको निराशा ही हाथ लगती है। कोपेनहेगेन सम्मेलन से इस सूखते कस्बे की प्यास बुझाने की क्या कोई राह निकलेगी। इस सवाल का जवाब तो बाद में मिलेगा, लेकिन तब तक शायद यह कस्बा पानी की एक–एक बूंद का मोहताज हो जाएगा।

खतरे में बंदर प्रजाति

ग्लोबल वार्मिंग की वजह से बंदरों की कुछ प्रजातियों का

अस्तित्व खतरे में है। दुनिया भर में बंदरों की विभिन्न प्रजातियों के व्यवहार, आहार और आकार का विश्लेषण वहां की जलवायु के साथ करने के बाद वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं। ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिकों के मुताबिक सबसे ज्यादा खतरा तो गुरिल्ला प्रजाति को है। इस समय केवल 50 गुरिल्ला जंगलों में हैं। तापमान में महज दो डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से कोलोबाइन्स सरीखी पत्ते खाने वाली अफ्रीकी बंदरों की प्रजाति विलुप्त हो जाएगी। वह पहले ही एक छोटे से क्षेत्र में सिमटकर रह गए हैं। चार डिग्री सेल्सियस तापमान बढ़ने से दक्षिण अमेरिका के बंदर मुश्किल में पड़ जाएंगे। हालांकि अफ्रीका की बबून प्रजाति की तरह फलों पर जिंदा बंदर अधिक तापमान सह सकते हैं।

टूटेगा गर्मी का रिकॉर्ड

वर्ष 2010 दुनिया का ऑन रिकॉर्ड सबसे गर्म साल हो सकता है। ब्रिटिश मौसम विभाग ने यह भविष्यवाणी की है। मौसम विज्ञानियों के पास 160 साल के मौसम का रिकॉर्ड है। इसमें 1998 को सबसे गर्म साल माना जाता है। ब्रिटिश वैज्ञानिकों का कहना है कि 2010 के सबसे गर्म साल बनने के पीछे इंसानों की कारगुजारियों से मौसम में आया बदलाव भी एक वजह हो सकती है। एक विदेशी अंग्रेजी खबर के मुताबिक, इस बार अल नीनो इफेक्ट 1998 के मुकाबले ज्यादा कमजोर है। लेकिन ग्रीन–हाउस गैसों के उत्सर्जन से पैदा होने वाला वॉर्मिंग इफेक्ट ज्यादा रहने की संभावना है। इसी वजह से 2010 सबसे गर्म साल बन सकता है। मौसम विज्ञानियों ने भविष्यवाणी की है कि अगले साल दुनिया का औसत तापमान 1961 से 1990 के औसत तापमान के मुकाबले करीब 0.6 डि.से. ज्यादा रहेगा। वर्ष 2010 में सालाना औसत तापमान 14. 58 सेल्सियस रहने की संभावना है।

मौसम विभाग का यह भी कहना है कि 2010 से 2019 के बीच आधे से ज्यादा वर्ष तापमान 1998 के मुकाबले ज्यादा गर्म रहने की आशंका है। यह चिंता की बात है। हालांकि उनका यह भी कहना है कि ऐसा नहीं है कि 2010 में तापमान का रिकॉर्ड टूटना निश्चित है। अगर अल नीनो का मौजूदा इफेक्ट सामान्य से कम हो गया या कहीं भयानक ज्वालामुखी विस्फोट हुआ तो ऐसा नहीं भी हो सकता है। वैसे, 2010 के सबसे गर्म साल होने की भविष्यवाणी पर सभी एक्सपर्ट एकमत नहीं हैं। ग्रीनपीस के बेन स्टीवर्ट कहते हैं कि अगर 2010 ऑन रिकॉर्ड सबसे गर्म साल रहा तो मिथक सच साबित होता जाएगा कि हम ग्लोबल कूलिंग की तरफ बढ़ रहे हैं। असलियत में दुनिया लगातार गर्म होती जा रही है और इसके लिए इंसान ही जिम्मेदार हैं।

जलवायु परिवर्तन के बाद भी खेती बचाने की कोशिश

जलवायु परिवर्तन का असर कृषि पर न पड़े, इसके लिए पूरी दुनिया के वैज्ञानिक लगातार प्रयोग में जुटे हैं। भारत के वैज्ञानिकों ने भी इसे चुनौती स्वरूप लिया है और इस चुनौती से जूझने को वे तैयार हैं। जलवायु परिवर्तन के बाद भी कृषि पर कोई खास असर न पड़े और किसानों को परेशानी का सामना न करना पड़े, इसके लिए वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित तरकीब निकाली है। इस तरकीब के जरिए वह किसानों को राहत देने में जुटे हुए हैं।

क्लाइमेट चेंज पर सेटेलाइट

जलवायु परिवर्तन को देखते हुए वैज्ञानिकों को हर पल पर

नजर रखने का निर्णय लिया गया है। सरकार की ओर से भी इस संबंध में भरपूर सहयोग देने का भरोसा दिया गया है। कुछ दिन पहले वैज्ञानिकों के एक सेमिनार को संबोधित करते हुए पर्यावरण मंत्री ने भरोसा जताया था कि वैज्ञानिक अपनी जरूरतें बताए, वह उसे उपलब्ध कराने में पीछे नहीं हटेंगे। जलवायु परिवर्तन से कृषि को बचाना हमारे सामने एक बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का सामना करने के लिए सरकार तैयार है, बस वैज्ञानिक स्थितियों से वाकिफ कराते रहे और अपनी जरूरतें बताते रहे। अब जलवायु परिवर्तन पर अध्ययन के लिए भारत एक सेटेलाइट लांच करने की तैयारी में है। समुद्री विशेषज्ञ दावा कर रहे हैं कि पिछले चार साल में नौ मिलीमीटर की बढ़ोतरी हो चुकी है। सरलअल्तिका सेटेलाइट नासा फ्रांस की अंतरिक्ष एजेंसी के उपग्रह जैसन–2 के काम में मदद करेगा। भू–विज्ञान मामलों के मंत्रालय में सचिव शैलेश नायक का कहना है कि सरल अल्तिका आंकड़े जुटाने में समुद्री विशेषज्ञों की मदद करेगा। सरल अल्तिका में के.ए. बैंड एल्टीमीटर हैं, जिसके चलते यह मौजूदा उपग्रहों की तुलना में ज्यादा सटीकता से समुद्र स्तर में वृद्धि को नापेगा। इस तरह हम स्थिति से निबटने के लिए पूर्व में ही तैयार हो जाएंगे।

मानसून की तह खंगालेगा 'मेघा ट्रापिक्स' उपग्रह

हमारे देश में एक बड़ी समस्या है बाढ़ और सूखा। आए दिन कहीं बाढ़ के कारण हजारों एकड़ फसलें तबाह हो जाती है तो कहीं सूखे के कारण। इस वर्ष जहां दक्षिणी भारत के विभिन्न प्रदेशों में बाढ़ ने तबाही मचाई वहीं उत्तर भारत का 40 फीसदी हिस्सा सूखे की चपेट में रहा। इसका असर सीधे तौर पर हमारे अनाज उत्पादन पर किसी न किसी रूप में पड़ा। जाहिर–सी बात है कि बाढ़ और सूखे से प्रभावित इलाके के किसान तबाह हो गए। उनके सारे सपने मिट्टी में मिल गए। किसानों की तबाही का किसी न किसी रूप में असर हमारे देश की अर्थव्यवस्था पर पड़ना निश्चित है। ऐसी नौबत दोबारा न आए, इसके लिए इसरो के वैज्ञानिकों ने विशेष उपग्रह तैयार किया है। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन (इसरो) की ओर से तैयार यह उपग्रह मानसून चक्र, बाढ़, सूखा, चक्रवात आदि के बारे में जानकारी देगा। अत्याधुनिक उपग्रह 'मेघा ट्रापिक्स' का 2010 के दूसरे उतरार्द्ध में प्रक्षेपण होगा।

इस उपग्रह के माध्यम से दो महत्वपूर्ण क्षेत्रों में शोध किए जाएंगे, जिसमें सागरीय वायुमण्डल और ऊर्जा विशेषतौर पर बादल से जुड़े विषय शामिल हैं। उपग्रह में माइक्रोवेव इमेजर लगा होगा, जिसके माध्यम से वर्षा और वायुमण्डलीय तत्वों की संरचना के अलावा सागरीय सतहों एवं वायु की गति का अध्ययन किया जाएगा। अधिकारी ने कहा कि उपग्रह के प्रक्षेपण के बाद सेंसर से जुड़े महत्वपूर्ण कार्य पूरे कर लिए जाने के बाद इससे प्राप्त आंकड़े वैश्विक वैज्ञानिक समुदाय के लिए उपलब्ध होंगे, जिसमें आठ से नौ महीने का समय लग सकता है।

केन्द्रीय पृथ्वी विज्ञान मंत्री पृथ्वीराज चव्हाण ने एक समारोह को संबोधित करते हुए कहा था कि कृषि, परिवहन, ऊर्जा जैसे जीवन संबंधी सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र मौसम और जलवायु से जुड़े हुए हैं। ऐसे समय में मौसम का सटीक आकलन महत्वपूर्ण हो जाता है। इस उद्देश्य के लिए जल्द ही हम 'मेघा ट्रापिक्स' उपग्रह प्रक्षेपित करेंगे। यह भारत–फ्रांस के बीच संयुक्त उद्यम मिशन होगा।

आपदा झेल सकने वाली फसलें विकसित कर रहे हैं वैज्ञानिक

जलवायु परिवर्तन को देखते हुए हमारे वैज्ञानिक भी सतर्क हो गए हैं। भारत में खेती बहुत हद तक मानसून पर निर्भर है और इसके कमजोर होने से खेती भी चौपट हो जाती है। लेकिन आने वाले सालों में सूखे की आपदा के दौरान भी फसलें खेतों में लहलहाती दिखेंगी। भारतीय वैज्ञानिक ऐसी फसलें तैयार करने में जुटे हुए हैं। उनकी कोशिश है कि ऐसी फसलें विकसित की जाएं, जिन पर पानी का विशेष असर नहीं हो। अगर धान की खेती पूरी तरह से बाढ़ में डूब जाए, तो भी बची रहे। इसी तरह कुछ ऐसी भी फसलें विकसित की जा रही हैं जो बिना पानी के भी उपज दे सकें। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के उपमहानिदेशक डॉ. स्वप्न दत्ता ने कुछ दिन पहले जारी एक बयान में कहा था कि परिषद किसानों की समस्या से वाकिफ है। परिषद किसानों की समस्याओं के निस्तारण के लिए हर सम्भव कोशिश में जुटी है। उन्होंने कहा कि नई किस्मों का फिलहाल परीक्षण किया जा रहा है। खाद्य सुरक्षा और सतत कृषि विकास पर वर्कशाप में भाग लेने के बाद उन्होंने यह भी कहा कि बाढ़ में भी उपज देने वाली धान की किस्म अगले दो से तीन साल में बाजार में आ जाएगी। इससे हमारी समस्या काफी हद तक दूर हो जाएगी। बाढ़ में उपज देने वाली धान की किस्म के बारे में दत्ता ने कहा था कि ये किस्में पानी के भीतर दो हफ्ते तक बची रह सकती हैं। यदि दो हफ्ते में पानी कम हो जाता है तो उनकी उपज पर विशेष असर नहीं पड़ेगा। बाढ़ के दौरान पौधों में उपापचय और फोटोसिंथेसिस ;प्रकाश संश्लेषण की क्रियाएं काफी धीमी हो जाती हैं। लेकिन धान की नई किस्म बाढ़ के दौरान दो सप्ताह तक आसानी से खड़ी रह सकेगी। पानी में डूबे रहने के दौरान यह पौधे एथनॉल बनाएंगे, जो उन्हें जीने के लिए ऊर्जा देगा। पानी घटने के बाद यह पौधे फिर सामान्य तरह से क्रिया करने लगेंगे। आमतौर पर भारत में एक बड़ा हिस्सा बाढ़ की चपेट में आ जाता है। इससे हजारों एकड़ धान की फसल बर्बाद हो जाती है।

सूखे में तैयार होगी सब्जी

वैज्ञानिकों की ओर से यह भी कोशिश की जा रही है कि सब्जियों की कुछ ऐसी प्रजाति विकसित की जाए, जो बिना पानी के तैयार हो सकें। इसके लिए वे रिसर्च कर रहे हैं। टमाटर, बैंगन, बंदगोभी के साथ ही मक्का की भी नई किस्में विकसित की जा रही हैं। इन फसलों की किस्मों को इस रूप में तैयार किया गया है जिससे ये सूखे की स्थिति में भी उपज दे सकें। देश में जीएम बैंगन को लेकर भले अभी उहापोह की स्थिति है, लेकिन सूखे में खेती के मामले को लेकर वैज्ञानिक खासा उत्साहित हैं।

बैंगन बनेगा पहली जेनेटिक सब्जी

अगर जीएम बैंगन को पूरी तरह से मंजूरी मिली तो बैंगन देश की पहली जेनेटिक सब्जी बन जाएगा। हालांकि जेनेटिक इंजीनियरिंग अप्रूवल कमेटी (जीईएसी) ने तो इसे अपनी तरफ से मंजूरी दे दी है। जीईएससी की बैठक में कृषि मंत्रालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर), स्वास्थ्य मंत्रालय और खाद्य मंत्रालय समेत कई गैर–सरकारी सदस्य शामिल थे। अब यह प्रस्ताव पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश के पास मंजूरी के लिए भेजा गया है। पर्यावरण मंत्रालय से मंजूरी के बाद इसे बाजार में उतारा जाएगा। आईसीएआर के उपमहानिदेशक व कमेटी के सदस्य डॉ. स्वप्न दासगुप्ता की मानें तो बीटी बैंगन विभिन्न जांच व परीक्षणों में खरा पाया गया है। बीटी बैंगन की खेती में जहां लागत कम आएगी, वहीं पैदावार अधिक होगी। साथ ही इसकी खेती पर्यावरण के अनुकूल है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी बीटी बैंगन सुरक्षित है। डॉ. दासगुप्ता

के मुताबिक बीटी बैंगन समेत पूरे माहौल में कीटनाशकों की कमी होती है जबकि सामान्य बैंगन की फसल पर कीटनाशकों का भारी छिड़काव करना पड़ता है। इतना ही नहीं इसमें पानी की भी कम जरूरत पड़ती है। यानी विपरीत परिस्थितियों में भी इसकी खेती कर किसान लाभ कमा सकते हैं।

इमारतों को ग्रीन रेटिंग

जलवायु परिवर्तन की वजह से न सिर्फ कृषि बल्कि दूसरे क्षेत्रों में भी असर पड़ने की संभावना है। चूंकि कृषि भारत में मूल आधार है। जब तक कृषि का विकास नहीं होगा तब तक देश व समाज का विकास नहीं हो सकता है। इसी अवधारणा को मानते हुए केन्द्र सरकार की ओर से हर विभाग को अपने स्तर से पहल करने को कहा गया है। अब ऊर्जा मंत्रालय ने भी अपने स्तर से पहल शुरू कर दी है। जलवायु परिवर्तन की चुनौतियों का सामना करने के लिए सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नई इमारतों को अब ग्रीन रेटिंग मानकों का अनिवार्य रूप से पूरी तरह पालन करने के निर्देश दिए हैं। केन्द्रीय अक्षय ऊर्जा मंत्री डॉ. फारूक अब्दुल्ला ने नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय गृह ग्रीन रेटिंग समन्वित आवास आकलन सम्मेलन में कहा कि सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नई इमारतों को अब ग्रीन रेटिंग मानकों का अनिवार्य रूप से पूरी तरह पालन करने संबंधी फैसला सरकार ने लिया है। इसका उद्देश्य इमारतों को पर्यावरण हितैषी बनाना और ऊर्जा के उच्च लक्ष्यों को हासिल करना है। उन्होंने कहा कि सरकारी और सार्वजनिक क्षेत्र की नई इमारतों को अब ग्रीन रेटिंग समन्वित आवास आकलन के लिए ग्रीन रेटिंग के तहत कम से कम तीन स्टार रेटिंग प्राप्त करना जरूरी है। डॉ. फारूक ने कहा कि पश्चिमी रेटिंग प्रणाली भारतीय जलवायु के लिए उपयुक्त नहीं है। इस बात को ध्यान में रखते हुए ग्रीन रेटिंग समन्वित आवास आकलन (गृह) ने भारतीय इमारतों के लिए विशेष रूप से डिजाइन तैयार किए हैं। ऊर्जा संसाधन संस्थान के प्रमुख आर. के. पचौरी ने कहा कि एक भारतीय रेटिंग प्रणाली है जो टेरी के तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा तैयार की गई है। ग्रीन इमारतों का मुख्य उद्देश्य कम से कम गैर–अक्षय स्रोतों की मांग और उनका कम इस्तेमाल करना है।

किसानों का देशी फंडा

इन दिनों जलवायु परिवर्तन के साथ ही खेत की उत्पादन क्षमता को लेकर भी सवाल खड़े किए जा रहे हैं। खेत की उर्वरता प्रभावित हो रही है। ऐसे में अधिक से अधिक जैविक खाद का प्रयोग करने पर बल दिया जा रहा है। ऐसे में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के किसानों ने एक नायाब तरीका खोजा है। वे देशी फंडे के जरिए फसल की उत्पादकता बढ़ाने में जुट गए हैं। हर खेत–चौराहे पर मिलने वाला बरगद ही उनका प्रमुख अस्त्र बन गया है। यही बरगद किसानों को बंपर पैदावार दिलाएगा। किसान बरगद के पेड़ के नीचे की एक किलो मिट्टी को रेत में मिलाकर खेत में डालते हैं और उनका दावा है कि इससे उर्वराशक्ति में जबर्दस्त इजाफा होगा। किसानों द्वारा ईजाद किए गए इस देसी फार्मूले पर कृषि विभाग ने मुहर लगा दी है। कृषि वैज्ञानिकों का कहना है कि बरगद के नीचे वाली मिट्टी में अरबों की संख्या में सूक्ष्मजीवी होते हैं जो पैदावार बढ़ाने का काम करेंगे। हम उपज से परेशान किसानों ने यह प्रयोग किया और उनके खेत का उत्पादन बढ़ने लगा है। दरअसल ज्यादातर किसान खाद, पानी और बीज के महंगे होने से परेशान हैं। ऐसे में वह बिना पैसे के तैयार खाद को हाथों हाथ ले रहे हैं। बरगद के पेड़ के पास की मिट्टी के खेत में इस्तेमाल करने का सुझाव दिया। इससे पैदावार में गजब का इजाफा देखने को मिला। खुद कृषि वैज्ञानिकों ने इस प्रयोग की सच्चाई को स्वीकार किया है। कृषि वैज्ञानिक डॉ. शिवसिंह का कहना है कि यह फंडा कुछ किसानों द्वारा तैयार किया गया था। अच्छे नतीजे सामने आने के बाद अब कृषि विभाग भी किसानों को यह फंडा अपनाने की सलाह दे रहे हैं। सर्वप्रथम मिट्टी और रेत का मिश्रण जुताई से पहले खेत में डाला जाएगा। हफ्ते भर बाद खेत की जुताई की जाए। उसके बाद सिंचाई करके फसल की बुआई कर दें। कृषि वैज्ञानिक डॉ. वरुणदेव सिंह का तर्क है कि बरगद के पेड़ के नीचे की मिट्टी में नमी अधिक होने के कारण जीवाश्म अधिक होते हैं। केंचुए की संख्या भी ज्यादा होती है। जब यह मिट्टी खेत में पहुंचती है तो यही जीवाश्म और केंचुए मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने का काम करते हैं।

कैसे करें मिट्टी का उपयोग

इस नुस्खे को आजमा चुके किसानों का कहना है कि वे बरगद के पेड़ की जड़ के बगल से एक किलो मिट्टी निकालकर उसे रेत में मिक्स करके खेत में डाल देते हैं। पेड़ के पास से जो मिट्टी उठाई जाती है उसमें अरबों की संख्या में इतने सूक्ष्मजीवी होंगे जो खेत में पहुंचते ही जमीन की उर्वराशक्ति को बढ़ाने का काम शुरू कर देंगे। खेत के एक हिस्से में पहुंचने वाले यह जीवाणु कुछ ही दिनों में पूरे खेत की मिट्टी को भुरभुरा बना देंगे।

(लेखक कृषि मामलों के जानकार हैं)

ई–मेल : shambhunath@gmail.com

कैसे बचाएं कृषि को ग्लोबल वार्मिंग के प्रभाव से

डॉ. दीप्ति विश्वास

दुनिया भर में मौसम में उथल–पुथल, कहीं सुनामी तो कहीं तूफानों का कहर, कहीं सूखा, कहीं बर्फबारी। ये निष्कर्ष अमेरिका के टेक्सास और इंग्लैंड के ड्यूक विश्वविद्यालय में चल रहे विभिन्न शोधों के निष्कर्ष के आधार पर पर्यावरणविदों और जीव विज्ञानियों ने निकाले हैं। 7 दिसंबर, 2009 को कोपेनहेगन में जलवायु परिवर्तन पर आरंभ हुए संयुक्त राष्ट्र की 15वीं कांफ्रेंस के नतीजे विकासशील देशों की उम्मीदों पर खरे नहीं उतरे। यद्यपि भारत, चीन, ब्राजील, दक्षिण एशिया ने अमेरिका से राजनीतिक समझौता किया, जिससे गर्म हो रही धरती के तापमान में दो डिग्री की कमी लाने के लिए कार्बन उत्सर्जन में कटौती का इरादा जताया गया है। समझौता औपचारिक तौर पर स्वीकृत तो नहीं माना जा सकता, लेकिन वह 'गौर करने लायक' जरूर है। कांफ्रेंस में कई चिन्तनीय सच सामने आए हैं। वर्ष 2009 इतिहास का पांचवां सबसे गर्म साल रहा, यह निष्कर्ष निकाला विश्व मौसम विज्ञान संगठन ने। गर्म हो रही धरती का सबसे अधिक प्रभाव कृषि क्षेत्र पर पड़ रहा है। भारत के संदर्भ में यह चेतावनी अत्यधिक महत्वपूर्ण इसलिए भी है क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला कृषि है।

> विश्व बैंक द्वारा जलवायु परिवर्तन के संबंध में दी गई रिपोर्ट के अनुसार ''ग्लोबल वार्मिंग समस्या की बढ़ती हुई गंभीरता को देखते हुए भारत को ऐसे कदम उठाने चाहिए जिससे वह इस कारण उत्पन्न गंभीर दुष्परिणामों के प्रभाव को कम कर सके। ग्रीनहाऊस गैस सन् 2040 तक दो गुना होने की संभावना है एवं इस सदी के अन्त तक तीन गुना। फलस्वरूप तापमान में वृद्धि होगी; अतिवृष्टि, सूखा, बाढ़, जैसी आपदाएं अधिक होंगी। मौसम अनियमित होगा, समुद्र के स्तर में वृद्धि होगी। इन सबका प्रभाव भारत में बहुत दूर तक होगा। विशेषज्ञों के अनुसार ग्लोबल वार्मिंग के कारण फसल का उत्पादन कम होगा, बीमारियां फैलेंगी और यह जैव–विविधता में कमी का कारण होगी।''

कोपेनहेगन में ''ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इन्डेक्स 2010'' द्वारा जारी सूची में भारत उन प्रथम दस देशों में है जो जलवायु परिवर्तन से सबसे ज्यादा प्रभावित होंगे। एक अध्ययन के अनुसार 2050 तक ठंड के दिनों का तापमान 3.2 डिग्री और गर्मी का 2.2 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है। तब मानसून की बारिश कम हो जाएगी और ठंड में होने वाली बारिश भी 10–20 फीसदी तक कम होने की आशंका है। वर्षा की मात्रा कम या ज्यादा होने के अलावा इसके समय में बदलाव का भी फसलों पर बुरा असर पड़ेगा। जलवायु में

होने वाला यह परिवर्तन हमारी राष्ट्रीय आय को भी प्रभावित कर रहा है और राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा पिछले तीन सालों में 1.5 प्रतिशत तक कम हुआ है। वर्ष 2007–08 में यह 17.6 प्रतिशत ही रह गया। 2009 का वर्ष हमारे लिए एक चेतावनी भरा वर्ष रहा है। इस वर्ष 23 प्रतिशत तक कम वर्षा हुई है जिससे फसलें सूख गईं। फलस्वरूप न केवल खाद्यान्नों की कमी का सामना करना पड़ रहा है वरन् खाद्यान्नों की कीमतें भी तेजी से बढ़ी हैं। एक अनुमान के अनुसार इस वर्ष सूखे की वजह से 20,000 करोड़ रुपये के खाद्यान्नों का नुकसान हुआ है। हमें अब यह सोचना पड़ेगा कि हमारी कृषि व्यवस्था में किस प्रकार के परिवर्तन किए जाएं जो 'क्लाइमेट–प्रूफ' हों।

भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा

वर्ष	राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा
1950–51	55.40
1960–61	51.3
1965–66	42.7
1968–69	44.4
1970–71	47.5
1980–81	46.0
1990–91	45.1
2000–01	45.0
2007–08[1]	17.6

[1] आर्थिक समीक्षा 2007–08

कोपेनहेगन में आयोजित कांफ्रेंस में कृषि वैज्ञानिक डॉ. एम.एस. स्वामीनाथन ने जलवायु परिवर्तन के भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव के बारे में कहा कि इससे लगभग 64 प्रतिशत लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा जिनके जीवनयापन का साधन कृषि है और सबसे बड़ा डर खाद्य सुरक्षा से संबंधित है। पं. जवाहरलाल नेहरू ने कहा भी था कि सब कुछ इंतजार कर सकता है लेकिन कृषि नहीं। कृषि एवं जलवायु परिवर्तन का भीषणतम प्रकोप सर्वहारा वर्ग पर पड़ रहा है, जिनकी आय का 50 प्रतिशत से भी अधिक हिस्सा अनाज खरीदने, पानी व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं से अपने को बचाने में खर्च होता है। ऐसा अनुमान है कि सूखे के कारण खरीफ की फसल में 7.5 प्रतिशत तक तथा मुख्य फसल चावल एवं अन्य अनाज दलहन, तिलहन में लगभग 19.7 प्रतिशत तक कमी की संभावना हो सकती है। भारत में खाद्य उत्पादन में 5 प्रतिशत कमी की संभावना जी.डी.पी. को एक प्रतिशत तक प्रभावित करेगी। इस मात्रा में खाद्यान्न उत्पादकता में कमी बहुत ही हानिकारक है क्योंकि विगत कई वर्षों से मानसून की स्थिति ठीक नहीं रही है।

इस वर्ष मानसून के समय में बदलाव की वजह से 51 प्रतिशत तक कृषि भूमि प्रभावित हुई है। नौ प्रतिशत आर्थिक विकास की दर को तभी बनाए रखा जा सकता है जबकि देश में कृषि उत्पादन सही समय पर अच्छे तरीके से हो। स्थिति और भी गंभीर होने के संकेत हैं क्योंकि तापमान बढ़ने से रबी की फसल को नुकसान होने की आशंका व्यक्त की जा रही है। कृषि वैज्ञानिकों के अनुसार बोवनी के बाद ठंड और ओस में ही गेहूं और चने के पौधे वृद्धि करते हैं। उनमें नई शाखाएं निकलती हैं लेकिन तापमान बढ़ा होने के कारण छोटे–छोटे पौधों में भी बालियां आ गई हैं। ऐसे में दानों का आकार छोटा और पैदावार कम होने की आशंका है। प्रो. स्वामीनाथन ने कहा है कि तापमान में एक डिग्री सेल्सियस की वृद्धि से भारत में 7 मिलियन टन गेहूं के उत्पादन मे कमी आएगी, जिससे 1.5 बिलियन डॉलर का वित्तीय नुकसान होने की संभावना है। तापमान में बढ़ोतरी से देश के कई इलाकों में दिसंबर में ही आम के पेड़ों में बौर दिखने लगे हैं।

एक अध्ययन के अनुसार यदि तापमान में एक से चार डिग्री सेल्सियस तक वृद्धि होती है तो भोज्य पदार्थों के उत्पादन में 30 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। जैसे भारत में चावल का वार्षिक औसत उत्पादन 90 मिलियन टन है। तापमान के बढ़ने से इसमें 2020 तक 6.7 प्रतिशत, 2050 तक 15.1 प्रतिशत, 2080 तक 28.2 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। गेहूं के उत्पादन में 2020 तक 5.2 प्रतिशत, 2050 तक 15.6 प्रतिशत, 2080 तक 31.1 प्रतिशत तथा आलू के उत्पादन में 2020 में तीन प्रतिशत, 2050 में 14 प्रतिशत तक कमी होने की संभावना है। सोयाबीन का उत्पादन 2070 तक 5–10 प्रतिशत तक कम होने की संभावना है जबकि सभी खाद्य पदार्थों की मांग में वृद्धि ही होगी। इन सबके अलावा जलवायु परिवर्तन के कुछ और भी प्रभाव खाद्य पदार्थों पर होंगे। यह फसलों की पौष्टिकता को प्रभावित करेगा। पौष्टिक तत्व जड़ों से फलों तक कम मात्रा में पहुंचेंगे। खाद्यान्न कम वजन के होंगे। फलस्वरूप प्रति हेक्टेयर उत्पादकता प्रभावित होगी। फल एवं सब्जियों के पेड़–पौधों में फूल तो खिलेंगे किंतु फल या तो कम आएंगे या कम वजन और पौष्टिकता वाले होंगे, उनकी पौष्टिकता प्रभावित होगी। बासमती एवं दूसरे प्रकार के चावलों की खुशबू प्रभावित होगी। परंपरागत फसलें गैर–परंपरागत क्षेत्रों में उगाई जा सकेंगी।

तापमान वृद्धि से समुद्र का जलस्तर बढ़ने से तटीय इलाकों में रहने वाले करोड़ों लोग पहले तो अपने जलस्रोतों के क्षारीय हो जाने की समस्या झेलने को मजबूर होंगे और फिर उनके खेतों और घरों को समुद्र निगल जाएगा। सामुद्रिक सतह के तापमान में 3 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि होने से बहुत से समुद्री जीव–जन्तु ऐसे स्थानों में चले जाएंगे जहां पर वह पहले कभी नहीं रहे। हिमालय के ग्लेशियर प्रति वर्ष 30 मीटर की दर से घटने लगेंगे जिससे उत्तर भारत के राज्यों में खेती के लिए पानी का संकट

पैदा हो जाएगा। आने वाले वर्षों में जलवायु में केवल इन दो बदलावों से करीब पांच करोड़ भारतीय प्रभावित होंगे। इनमें से अधिसंख्य पर्यावरण शरणार्थी के रूप में शहरों की ओर पलायन करेंगे। एक तरफ जलवायु परिवर्तन का प्रत्यक्ष प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ा है तो अप्रत्यक्ष प्रभाव आय की हानि और अनाजों की बढ़ती कीमतों के रूप में परिलक्षित हो रहा है।

उपाय – जलवायु परिवर्तन की समस्या का सामना करने के लिए युद्ध–स्तरीय तैयारी की जरूरत है। जलवायु परिवर्तन के कारण सूखा, बाढ़, महामारी और कृषि उपज में कमी से जिस बड़े पैमाने पर मौतें होने का अंदेशा है उतनी मौतें तो पृथ्वी पर अब तक हुए किसी भी युद्ध में नहीं हुई। जलवायु परिवर्तन के बुरे प्रभावों से फसलों को बचाने के लिए हमें जल्दी ही विभिन्न उपायों को अपनाना होगा। जलवायु के बदलाव के बारे में प्रतिदिन नए समाचार, नए आंकड़े और नए विश्लेषणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अब भूमण्डल स्तर के ऐसे पर्यावरणीय बदलाव हो रहे हैं जिनके कारण पानी की उपलब्धता और भी विकट होने वाली है। ऐसी स्थिति में पानी की एक बूंद को भी व्यर्थ नहीं जाने देना है। जल संरक्षण को रचनात्मक जन–आंदोलन का रूप देकर आम लोगों का योगदान प्राप्त करना सबसे बड़ी जरूरत है। इसके लिए हमें वाटर हार्वेस्टिंग के अलावा पानी को संग्रह करने के लिए विभिन्न व्यवस्थाएं करनी होंगी। खेती में ऐसी तकनीकी का प्रयोग करना होगा जो पानी की बचत कर सकें। भारत में पिछले कई वर्षों से जल संरक्षण, नमी संरक्षण और भूजल दोहन की योजनाएं लागू की गई हैं, लेकिन इसके मिश्रित परिणाम ही प्राप्त हुए हैं। इस संदर्भ में तकनीकी के अधिकतम इस्तेमाल से काफी कुछ हासिल किया जा सकता है। इसरो द्वारा सेटेलाइट मैपिंग अधिकतम परिणाम हासिल करने की दिशा में वॉटरशेड मैनेजमेंट में बेहद लाभकारी सिद्ध हुई है। हमें सिंचाई परियोजनाओं पर और अधिक खर्च करना होगा।

भारत में 80 प्रतिशत खेत एक हेक्टेयर से भी छोटे हैं। ऐसी स्थिति में छोटे एवं सीमान्त किसानों को जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप बार–बार आने वाली बाढ़ एवं सूखे का सामना करना बहुत कठिन होता है। अतः प्रो. स्वामीनाथन के अनुसार जिस प्रकार दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में स्व–सहायता समूह एवं सहकारी संगठन कार्य कर रहे हैं, उसी प्रकार छोटे किसानों के लिए स्व–सहायता समूह आधारित कृषि जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न फसलों की घटती उत्पादकता एवं खाद्यान्न संकट से बचने का अच्छा उपाय है। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप भारत पुनः खाद्यान्न पदार्थों की कमी के दौर में प्रवेश कर रहा है जबकि खाद्यान्न पदार्थों की कीमतें विश्व स्तर पर बढ़ रही हैं। ऐसी स्थिति में खाद्य सुरक्षा के लिए सरकार की अनाज भंडारण की क्षमता बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती है। फसल सुरक्षा के लिये बीजों का भंडारण भी उतना ही महत्वपूर्ण हो चुका है। अब यह बहुत आवश्यक हो गया है कि हम भंडारण के आधुनिक तरीकों एवं संरचनाओं का इस्तेमाल करें, जिससे फसल कटने के बाद होने वाले नुकसान से बचा जा सके।

नए शोधों के द्वारा ऐसे नई बीजों, फसलों का विकास किया जाना चाहिए जो सूखे और अधिक तापमान को झेल सकें तथा

पानी, उर्वरकों की आवश्यकता भी कम हो। इस प्रकार के शोधों के लिए नीति निर्धारकों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। ऐसी फसलों के बारे में कृषकों को समय रहते जानकारी देनी चाहिए। सरकार को जलवायु शोध एवं प्रबंधन संस्थान कृषि शोध संस्थानों के आसपास स्थापित करना चाहिए, ताकि जलवायु में हो रहे क्षेत्रवार परिवर्तनों के आधार पर फसलों को परिवर्तित किया जा सके। सूखे के समय नीति निर्धारकों को राशि आबंटित करते समय तात्कालिक कारण एवं उपायों के अलावा लंबी अवधि के उपायों पर भी ध्यान देना चाहिए। बंजर भूमि विकसित करके उसे खेती योग्य बनाना चाहिए। ग्रामीण विकास मंत्रालय की संसदीय स्थायी समिति की रिपोर्ट में साफ कहा गया है कि यदि देश में खाद्य सुरक्षा का लक्ष्य हासिल करना है तो सूखाग्रस्त और खराब भूमि को विकसित करने का काम तेजी से करना होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय खाद्य नीति शोध संस्थान के अनुसार सरकार को इस समस्या से निपटने के लिए प्रतिवर्ष 7000 करोड़ रु. की राशि आबंटित करनी चाहिए। वर्तमान में यह राशि सूखे के कारण उत्पादन में हुई कमी का 30 प्रतिशत से भी कम है। बढ़ी हुई राशि का प्रयोग सिंचाई व कृषि के लिए अधोसंरचनात्मक सुविधाओं के लिए अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए। यदि नीति निर्धारक समय रहते पर्याप्त विनियोग का निर्णय लेते हैं तो किसानों को राहत मिल सकेगी और वे कृषि कार्य को जारी रख सकेंगे। इसके अलावा इस समस्या से निपटने के लिए सार्वजनिक एवं निजी दोनों ही क्षेत्रों में और अधिक विनियोग करना चाहिए।

जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप उत्पन्न चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में ऐसे तरीकों की समीक्षा किया जाना आवश्यक है जिसके द्वारा हमारे कृषक जलवायु परिवर्तन के कारण उत्पन्न कठिनाइयों का सामना करते हुए फसलों का उत्पादन कर सकें एवं उन्हें समुचित लाभ भी हो। कृषि से उनका मोह भंग न हो। समुद्री तटों में रहने वाले समुदायों की रक्षा हेतु उपाय करना आवश्यक है और इसे राष्ट्रीय मिशन में शामिल किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में अन्तर्राष्ट्रीय बातचीत भी महत्वपूर्ण है। जलवायु परिवर्तन के बुरे प्रभावों से बचने के लिए कृषि क्षेत्र में तकनीकी, संस्थागत सुधारों की एवं नीतियों में संशोधन की अत्यन्त आवश्यकता है। हमें यह हमेशा याद रखना चाहिए– ''चिड़िया कितनी उड़े आकाश, दाना है धरती के पास''।

(लेखिका हमीदिया महाविद्यालय, भोपाल में अर्थशास्त्र की सहायक प्राध्यापक हैं।)

कुरुक्षेत्र मंगवाने का पता
विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग
पूर्वी खंड–4, तल–7
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066

मूल्य एक प्रति	:	10 रुपये
वार्षिक शुल्क	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	180 रुपये
त्रिवार्षिक	:	250 रुपये
विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)		
पड़ोसी देशों में	:	530 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में	:	730 रुपये (वार्षिक)

सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

“व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए आर्थिक सहायता से मेरे सपने हो रहे पूरे”

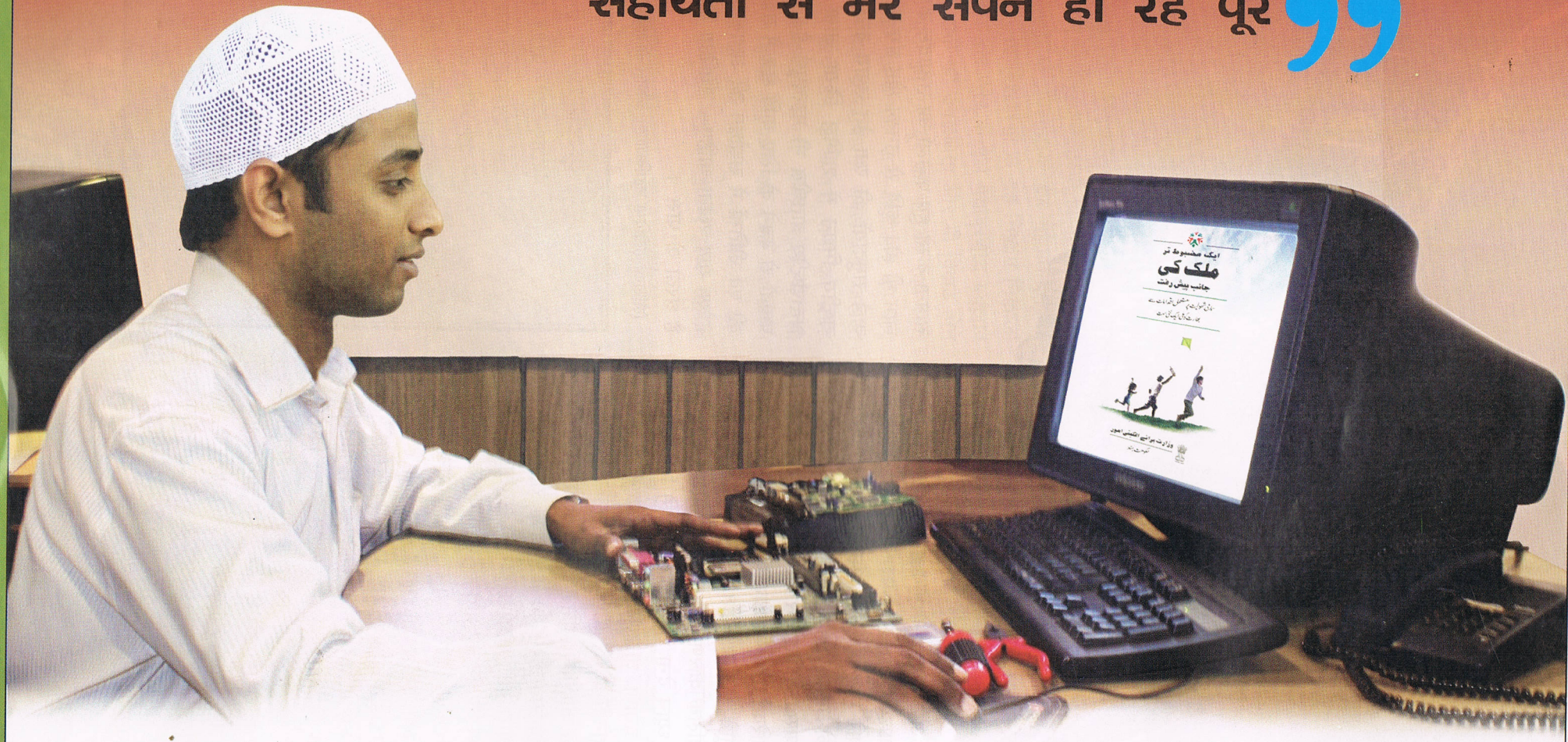

प्रधानमंत्री का
नया 15 सूत्री कार्यक्रम
अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए

भारत निर्माण

गाँव शहर एक साथ चलेगा, देश हमारा आगे बढ़ेगा

अल्पसंख्यकों के कल्याण के लिए प्रधानमंत्री का नया 15 सूत्री कार्यक्रम

- विभिन्न सरकारी योजनाओं के परिव्यय और लक्ष्य का 15% अल्पसंख्यकों हेतु सुनिश्चित
- प्राथमिक क्षेत्र के अंतर्गत अल्पसंख्यकों को ऋण प्रदान करने के लिए रु. 96,160 करोड़ का अग्रिम
- 22.23 लाख से अधिक छात्रवृत्तियाँ अल्पसंख्यक समुदाय के छात्रों को दी गई

श्रीमती सोनिया गांधी
अध्यक्ष, यूपीए

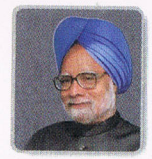

डॉ. मनमोहन सिंह
प्रधानमंत्री, भारत

davp 22201/13/0028/0910
KH-3/10/6

कृषि की उत्पादकता पूरी तरह से मौसम,जलवायु और पानी की उपलब्धता पर निर्भर होती है; इनमें से किसी भी कारक के बदलने अथवा स्वरूप में परिवर्तन से कृषि उत्पादन प्रभावित होता है। कृषि का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध है, जल-जंगल-जमीन ही प्रकृति का आधार हैं और यही कृषि का भी। आपदाओं से कृषि पहले भी खतरे में पड़ती रही है। बाढ़-सूखा-भूस्खलन जैसी घटनाओं ने कई बार किसानों को भुखमरी के कगार पर खड़ा किया है, लेकिन ये आपदाएं अनेक वर्षों में एक बार आती थीं इसलिए किसान संभल जाता था। आज ऐसी आपदाएं प्रतिवर्ष आ रही हैं और अपने भीषण स्वरूप में आ रही हैं। ऐसे में इनसे निपटने के उपाय ढूंढ़ना जरूरी होता जा रहा है।

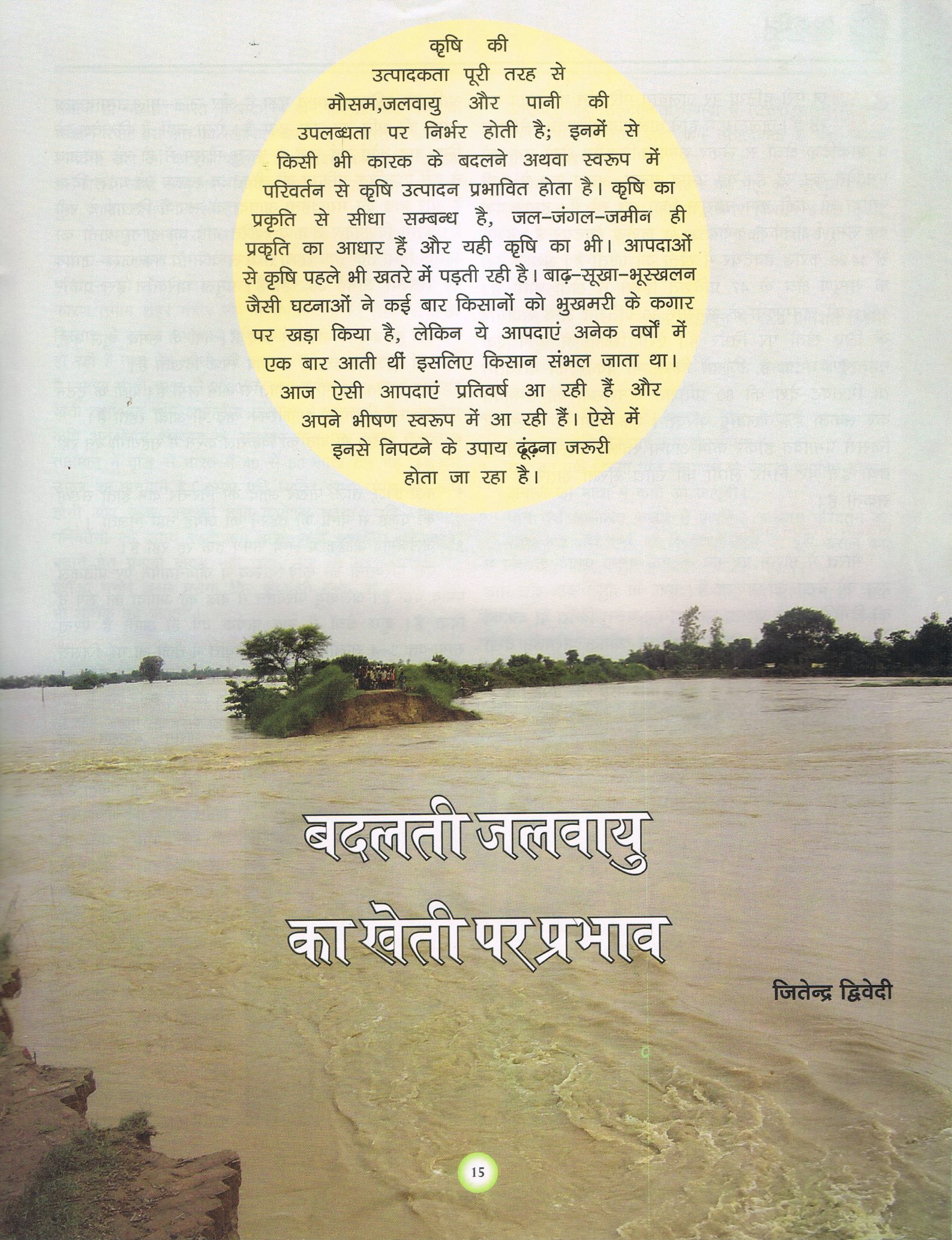

बदलती जलवायु का खेती पर प्रभाव

जितेन्द्र द्विवेदी

आज पूरी दुनिया पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव पड़ रहे हैं। जलवायु में होने वाले यह परिवर्तन ग्लेशियर व आर्कटिक क्षेत्रों से लेकर उष्ण कटिबंधीय क्षेत्रों तक को प्रभावित कर रहे हैं। यह प्रभाव अलग–अलग रूप में कहीं ज्यादा तो कहीं कम महसूस किए जा रहे हैं। हमारे देश का सम्पूर्ण क्षेत्रफल करीब 32.44 करोड़ हेक्टेयर है। इसमे से 14.26 करोड़ हेक्टेयर में खेती की जाती है। अर्थात देश के सम्पूर्ण क्षेत्र के 47 प्रतिशत हिस्से में खेती होती है। 1991 की जनगणना के अनुसार 65 प्रतिशत लोग रोजगार के लिए खेती पर निर्भर हैं। ऐसी स्थिति में कृषि एक महत्वपूर्ण घटक है, जिसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन या गिरावट देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित कर सकता है। जलवायु परिवर्तन एक ऐसा ही कारक है जिससे प्रभावित होकर कृषि अपना स्वरूप बदल सकती है तथा इस पर निर्भर लोगों की खाद्य सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है।

जलवायु परिवर्तन व बाढ़

भारत में मौसम बदलाव के एक प्रमुख प्रभाव के रूप में बाढ़ को देखा जा सकता है। देश का बहुत बड़ा क्षेत्र बाढ़ की विभीषिका को झेलता आ रहा है। परन्तु विगत दो दशकों से बाढ़ के स्वरूप, प्रवृत्ति व आवृत्ति में व्यापक परिवर्तन देखा जा रहा है। ऐसे बदलाव के चलते कृषि,स्वास्थ्य जीवनयापन आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है और जान–माल,उत्पादकता आदि की क्षति का क्रम बढ़ा है। ऐसा नहीं है कि देश के लिए बाढ़ कोई नई बात है परन्तु मौसम में हो रहे बदलाव ने इस प्राकृतिक प्रक्रिया की तीव्रता व स्वरूप को बदल दिया है और बाढ़ की भयावहता आपदा के रूप में दिखाई दे रही है। इसमें विशेषकर तेज व त्वरित बाढ़ का आना, पानी का अधिक दिनों तक रुके रहना तथा लम्बे समय तक जल–जमाव की समस्या सामने आ रही है। प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार रहे–

- वर्षा के क्रम में परिवर्तन आए हैं। वर्षा के समय, कुल वर्षा, वर्षा की क्रमबद्धता में बदलाव स्पष्ट दिखता है।
- बाढ़ त्वरित रूप में तेज गति से आने लगी है। बांधों के टूटने व अन्य कारणों से आकस्मिक बाढ़ भी आती रहती है।
- छोटी नदियां भी बाढ़ को विकराल करने में सहयोगी बन रही हैं।
- बड़ी झील, ताल, पोखरे आदि की निरन्तर कम होती संख्या की वजह से पानी को ठहरने की जगह नहीं मिलती ।
- जलजमाव अधिक व लम्बे समय तक रह रहा है।

ऐसे परिवर्तनों का कृषि,स्वास्थ्य व जीवनयापन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। जलवायु परिवर्तन ने बाढ़ को आपदा का रूप दे दिया है। कुछ क्षेत्रों में बाढ़ प्रत्येक वर्ष ही आती है परन्तु सामान्यतः 3–4 सालों में बाढ़ की आवृत्ति में तेजी आ गई जिससे जान–माल का बहुत नुकसान होने लगा है।

जलवायु परिवर्तन व सूखा

मौसम बदलाव का दूसरा प्रमुख प्रभाव सूखे के रूप में देखा जा सकता है। तापमान वृद्धि एवं वाष्पीकरण की दर तीव्र होने के परिणामस्वरूप सूखाग्रस्त क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। मौसम बदलाव के चलते वर्षा समयानुसार नहीं हो रही है और उसकी मात्रा में भी कमी आई है। मिट्टी की जलग्रहण क्षमता का कम होना भी सूखा का एक प्रमुख कारण है। बहुत से क्षेत्र जो पहले उपजाऊ थे आज बंजर हो चले हैं। वहां की उत्पादकता

समाप्त हो गई है। भारत के संदर्भ में ग्रीन पीस इण्डिया की एक सर्वेक्षण रिपोर्ट इस बात को रेखांकित करती है कि भारत में सर्वाधिक आमदनी वाले वर्ग के एक फीसदी लोग सबसे कम आमदनी वाले 38 फीसदी लोगों के मुकाबले कार्बन–डाई–आक्साइड का साढ़े चार गुना ज्यादा उत्सर्जन करते हैं।

गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के अध्यक्ष डा0 शिराज वजीह का कहना है कि लगातार बढ़ता शहरीकरण जलवायु परिवर्तन को और बढ़ावा देगा और बढ़ती शहरी जनसंख्या के कारण तमाम शहर गंभीर रूप से प्रभावित होंगे। शहरी क्षेत्रों के विस्तार के कारण उपजाऊ भूमि इमारतों के निर्माण हेतु उपयोग हो रही है तथा पेड़–पौधों की संख्या तेजी से कम होती जा रही है। भारत में ही 1955 से 2000 के बीच करीब 2–3 लाख हेक्टेयर खेती तथा वन भूमि आवासीय उपयोग में आ चुकी है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अनुसार मात्र एक डिग्री सेण्टीग्रेड तापमान में वृद्धि से भारत में 40 से 50 लाख टन गेहूं की कम उपज का अनुमान है। इससे प्रति व्यक्ति खाद्य उपलब्धता कम होगी और खाद्य असुरक्षा तथा कुपोषण बढ़ेगा। यदि जलवायु परिवर्तनों को समय रहते कम करने तथा खाद्यान्न उपलब्धता बढ़ाने हेतु प्रभावी कदम नही उठाए गए तो शहरी गरीबों पर इसका गंभीर असर पड़ेगा और कुपोषित बच्चों की संख्या और भी अधिक बढ़ जाएगी।

जलवायु परिवर्तन का फसलों पर प्रभाव

कृषि क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन के जो संभावित प्रभाव दिखने वाले हैं वह मुख्य रूप से दो प्रकार के दिखाई दे सकते हैं। एक तो क्षेत्र आधारित, दूसरे फसल आधारित अर्थात विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों पर अथवा एक ही क्षेत्र की प्रत्येक फसल पर अलग–अलग प्रभाव पड़ सकता है।

वर्ष	मौसम	तापमान वृद्धि (से.ग्रे.)		वर्षा में परिवर्तन (प्रतिशत)	
		न्यूनतम	अधिकतम	न्यूनतम	अधिकतम
2020	रबी	1.08	1.54	.1.95	4.36
	खरीफ	0.87	1.12	1.81	5.10
2050	रबी	2.54	3.18	.9.22	3.82
	खरीफ	1.81	2.37	7.18	10.52
2080	रबी	4.14	6.31	.24.83	.4.50
	खरीफ	2.91	4.62	10.10	15.18

गेहूं और धान हमारे देश की प्रमुख खाद्य फसलें हैं। इनके उत्पादन पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव पड़ता है।

गेहूं के उत्पादन पर प्रभाव

- अध्ययनों में पाया गया है कि यदि तापमान 2 से.ग्रे. के करीब बढ़ता है तो अधिकांश स्थानों पर गेहूं की उत्पादकता में कमी आएगी। जहां उत्पादकता ज्यादा है (उत्तरी भारत में) वहां कम प्रभाव दिखेगा, जहां कम उत्पादकता है वहां ज्यादा प्रभाव दिखेगा।
- प्रत्येक 1 से.ग्रे. तापमान बढ़ने पर गेहूं का उत्पादन 4–5 करोड़ टन कम होता जाएगा। अगर किसान इसके बुआई का समय सही कर ले तो उत्पादन की गिरावट 1–2 टन कम हो सकती है।

धान के उत्पादन पर प्रभाव

- हमारे देश में कुल फसल उत्पादन में 42.5 प्रतिशत हिस्सा धान की खेती का है।
- तापमान वृद्धि के साथ–साथ धान के उत्पादन में गिरावट आने लगेगी।
- अनुमान है कि 2 से.ग्रे. तापमान वृद्धि से धान का उत्पादन 0.75 टन प्रति हेक्टेयर कम हो जाएगा।
- देश का पूर्वी हिस्सा धान उत्पादन से ज्यादा प्रभावित होगा। अनाज की मात्रा में कमी आ जाएगी।
- धान वर्षा आधारित फसल है इसलिए जलवायु परिवर्तन के साथ बाढ़ और सूखे की स्थितियां बढ़ने पर इस फसल का उत्पादन गेहूं की अपेक्षा ज्यादा प्रभावित होगा।

जलवायु परिवर्तन से केवल फसलों का उत्पादन ही नहीं प्रभावित होगा वरन् उनकी गुणवत्ता पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। अनाज में पोषक तत्वों और प्रोटीन की कमी पाई जाएगी जिसके कारण संतुलित भोजन लेने पर भी मनुष्यों का स्वास्थ्य प्रभावित होगा और ऐसी कमी की अन्य कृत्रिम विकल्पों से भरपाई करनी पड़ेगी। गंगा तटीय क्षेत्रों में तापमान वृद्धि के कारण अधिकांश फसलों का उत्पादन घटेगा।

जलवायु परिवर्तन का जल संसाधन पर प्रभाव

पृथ्वी पर इस समय 140 करोड़ घन मीटर जल है। इसका 97 प्रतिशत भाग खारा पानी है जो समुद्रों में स्थित है। मनुष्यों के हिस्सें में कुल 136 हजार घन मीटर जल ही बचता है। पानी तीन रूपों में पाया जाता है–तरल जोकि समुद्रों, नदियों,तालाबों और भूमिगत जल में पाया जाता है। ठोस–जोकि बर्फ के रूप में पाया जाता है। गैस–वाष्पीकरण द्वारा जो पानी वातावरण में गैस के रूप में मौजूद होता है। पूरे विश्व में पानी की खपत प्रत्येक 20 साल में दुगुनी हो जाती है जबकि धरती पर उपलब्ध पानी की मात्रा सीमित है। शहरी क्षेत्रों में, कृषि क्षेत्रों में और उद्योगों में बहुत ज्यादा पानी बेकार होता है। यह अनुमान लगाया जा रहा है यदि इसको सही ढंग से व्यवस्थित किया जाए तो 40 से 50 प्रतिशत तक पानी की बचत की जा सकती है।

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषकों के लिए जल–आपूर्ति की भयंकर समस्या हो जाएगी तथा बाढ़ एवं सूखे की बारम्बारता में

वृद्धि होगी। अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में लम्बे शुष्क मौसम तथा फसल उत्पादन की असफलता बढ़ती जाएगी। यही नहीं, बड़ी नदियों के मुहानों पर भी कम जल बहाव, लवणता, बाढ़ में वृद्धि तथा शहरी व औद्योगिक प्रदूषण की वजह से सिंचाई हेतु जल उपलब्धता पर भी खतरा महसूस किया जा सकता है। हमारे जीवन में भूमिगत जल की महत्ता सबसे अधिक है। पीने के साथ–साथ कृषि व उद्योगों के लिए भी इसी जल का उपयोग किया जाता है। जनसंख्या बढ़ने के साथ ही पानी की मांग में बढ़ोतरी होने लगी है जो स्वाभाविक है। परन्तु बढ़ते जल प्रदूषण और उचित जल प्रबन्धन न होने के कारण पानी आज एक समस्या बनने लगी है। सारी दुनिया में पीने योग्य पानी का अभाव होने लगा है।

गांवों में जल के पारम्परिक स्रोत लगभग समाप्त होते जा रहे हैं। गांव के तालाब, पोखरे, कुंओं का जलस्तर बनाए रखने में मददगार होते थे। किसान अपने खेतों में अधिक से अधिक वर्षा जल का संचय करता था ताकि जमीन की आर्द्रता व उपजाऊपन बना रहे। परन्तु अब बिजली से ट्यूबवैल चलाकर और कम दामों में बिजली की उपलब्धता से किसानों ने अपने खेतों में जल का संरक्षण करना छोड़ दिया।

जलवायु परिवर्तन का मिट्टी पर प्रभाव

कृषि के अन्य घटकों की तरह मिट्टी भी जलवायु परिवर्तन से प्रभावित हो रही है। रसायनिक खादों के प्रयोग से मिट्टी पहले ही जैविक कार्बनरहित हो रही थी, अब तापमान बढ़ने से मिट्टी की नमी और कार्यक्षमता प्रभावित होगी। मिट्टी में लवणता बढ़ेगी और जैव विविधता घटती जाएगी। भूमिगत जल के स्तर का गिरते जाना भी इसकी उर्वरता को प्रभावित करेगा। बाढ़ जैसी आपदाओं के कारण मिट्टी का क्षरण अधिक होगा वहीं सूखे की वजह से इसमें बंजरता बढ़ती जाएगी। पेड़–पौधों के कम होते जाने तथा विविधता न अपनाए जाने के कारण ऊपजाऊ मिट्टी का क्षरण खेतों को बंजर बनाने में सहयोगी होगा।

जलवायु परिवर्तन का रोग व कीट पर प्रभाव

जलवायु परिवर्तन से कीट व रोगों की बढ़त पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ता है। तापमान,नमी तथा वातावरण की गैसों से पौधों, फफूंद तथा अन्य रोगाणुओं के प्रजनन में वृद्धि तथा कीटों और उनके प्राकृतिक शत्रुओं के अंतर्सम्बन्धों में बदलाव आदि दुष्परिणाम देखने को मिलेंगे। गर्म जलवायु कीट पंतगों की प्रजनन क्षमता में वृद्धि हेतु सहायक होती है। लम्बे समय तक चलने वाले बसंत, गर्मी व पतझड़ के मौसम में अनेक कीटों की प्रजनन संख्या अपना जीवन चक्र पूरा करती है। जाड़ों में कहीं छुपकर ये लार्वा को बचाए रखते हैं। हवा के रूख में बदलाव से हवा–जनित कीटों में वृद्धि के साथ–साथ बैक्टीरिया और फंगस में भी वृद्धि होती है। इनको नियंत्रित करने के लिए अधिक से अधिक मात्रा में कीटनाशक प्रयोग किए जाएंगे जो अन्य बीमारियों को बढ़ावा देंगे। जानवरों में बीमारियां भी समान रूप से बढ़ेंगी।

जलवायु परिवर्तन का जैव विविधता पर प्रभाव

सूखे,लवणता आदि से जमीन की उर्वरता समाप्त होने का असर पेड़–पौधों के स्वास्थ्य अथवा पुनः उगने की क्षमता पर पड़ता है। इनके नष्ट होने से उस क्षेत्र में रहने वाले मनुष्यों व जानवरों पर भारी संकट आ जाता है क्योंकि यह उनके लिए महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इससे वहां रहने वालों की गरीबी व खाद्य–सुरक्षा खतरे में पड़ जाती है।

कैसे कम हो सकता है ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन

कृषि क्षेत्र से होने वाले ग्रीन हाऊस गैसों का उत्सर्जन कम करने का सबसे प्रभावी माध्यम है जैविक खेती। अनेक अध्ययनों व क्षेत्र परीक्षणों से यह साबित हो चुका है कि जैविक कृषि अपनाकर इन नुकसानदायक गैसों के उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है।

- जैविक खेती ग्रीनहाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम कर सकती है।
- जैविक खेती मिट्टी में कार्बन को अवशोषित कर सकती है।

उपरोक्त दोनों बिन्दुओं पर जैविक खेती का अनेक क्षेत्रों में परीक्षण किया जा चुका है और आंकड़े बताते हैं कि ऐसा निश्चित तौर पर होता है।

आधुनिक कृषि की तुलना में जैविक खेती से ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन बहुत कम मात्रा में होता है। बाढ़ग्रस्त क्षेत्र हो या सूखाग्रस्त क्षेत्र, स्थाई या जैविक कृषि से प्रति हेक्टेयर ज्यादा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है। विशेषकर यदि पारम्परिक बीजों का इस्तेमाल किया जाए तो और बेहतर परिणाम देखे जा सकते हैं। मिट्टी में कार्बन के एकत्रीकरण को जैविक खेती बहुत हद तक कम कर देती है। इसमें अनेक अध्ययन किए गए जिसमें 80 प्रतिशत तक कमी पाई गई है।

नाइट्रोजन की भूमिका

आधुनिक कृषि में सबसे ज्यादा ग्रीनहाऊस गैसों का उत्सर्जन रसायनिक उर्वरकों द्वारा होता है। विश्व में रसायनिक फर्टिलाइजर की खपत 2005 में 90.86 करोड़ टन थी। जबकि इसको तैयार करने में 90 करोड़ टन फासिल फ्यूल (डीजल आदि) जलाया गया जो जलवायु परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। जैविक खेती नाइट्रोजन के लिए आत्मनिर्भर है अर्थात इसमें पर्याप्त मात्रा में नाइट्रोजन की उपलब्धता रहती है। मिश्रित खेती के साथ जानवरों के गोबर से तैयार खाद व फसल अवशेषों से तैयार खाद नाइट्रोजन पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न करती है।

इस प्रकार नाइट्रस आक्साइड जैसे खतरनाक गैस के उत्सर्जन को जैविक खेती ही कम कर सकती है क्योंकि इनके उत्सर्जन का मुख्य स्रोत रसायनिक फर्टिलाइजर हैं। विविधतापूर्ण खेती, जैविक खाद, फसल चक्र, हरी खाद और दलहनी फसलें भी नाइट्रस आक्साइड के उत्सर्जन को बहुत कम करने की क्षमता रखती है जोकि जैविक या स्थाई खेती के मूल स्तम्भ हैं।

मीथेन का उत्सर्जन

कुल ग्रीनहाऊस गैसों में मिथेन का प्रतिशत 14 है जिसमें दो तिहाई हिस्सा कृषि द्वारा उत्सर्जित होता है। जैविक अथवा स्थाई कृषि अपनाकर इसके प्रभाव को भी कम किया जा सकता है। जानवरों की देशी प्रजातियां इसमें बहुत मददगार हैं। विशेषकर दुधारू गायों से व जानवरों के छोटे बच्चों से मिथेन का उत्सर्जन कम होता है। जानवरों के गोबर के समुचित उपयोग से भी मिथेन उत्सर्जन में कमी लाई जा सकती है। धान के खेतों से निकलने वाली मिथेन गैस के लिए नई उन्नत प्रजातियां, जिसमें खेत में पानी का जमाव कम करना पड़े, उचित होंगी। कम पानी वाले धान की खेती लाभदायक होगी।

कार्बन–डाई–आक्साइड का उत्सर्जन

जैविक खेती कार्बन को मिट्टी में अवशोषित करती है। मिट्टी के क्षरण से कार्बन का नुकसान होता है जो सीधे मिट्टी की उत्पादकता पर प्रभाव डालता है। जैविक खादों व खेती की विविधता से मिट्टी में कार्बन का उचित अनुपात बना रहता है। खाद्य सुरक्षा के दृष्टिकोण से लोगों को अपने खान–पान के तौर–तरीकों में भी बदलाव लाना होगा, जिससे रसायन आधारित खेती व विदेशी जानवरों की नस्लों में कमी आए और जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से कृषि को सुरक्षित किया जा सके।

फसल चक्र व खेत का तंत्र

- फसलों की किस्मों को बढ़ावा;
- फसल चक्र में बहुवर्षीय वृक्षों का सामंजस्य;
- पौधों की क्यारियों के बीच जमीन पर फैलने वाली फसलें;
- खेती का आत्मनिर्भर तंत्र विकसित करना।

फसल की अधिक उत्पादकता एकल खेती से प्राप्त हो सकती है और यह पूरी तरह बाजार पर निर्भर खेती है विशेषकर बीज, रसायनिक खाद व कीटनाशक के संदर्भ में। स्थाई कृषि में किसान अपने स्वयं की तैयार लागत सामग्री का उपयोग करके खेती में खर्च भी कम करता है और लाभ भी ज्यादा कमाता है। स्थाई कृषि में धरती को पोषक तत्वों की पूर्ति मिट्टी से ही हो जाती है क्योंकि जैविक खादों व दलहनी फसलों तथा साथ में वृक्षों के संयोजन से मिट्टी की सभी जरूरतें पूरी हो जाती हैं। उन्हें अतिरिक्त पोषक तत्वों की आवश्यकता नहीं रहती। स्थाई कृषि में उत्पादकता स्वयं ही बढ़ जाती है क्योंकि मिट्टी में स्वाभाविक रूप से सभी तत्व मौजूद होते हैं। जानवरों के गोबर द्वारा तैयार खाद, कृत्रिम खादों से कहीं बेहतर साबित होती है।

पोषक तत्व व खाद प्रबंधन

- खेत में नाइट्रोजन को बढ़ाना;
- फसल की आवश्यकता के अनुरूप ही खाद डालना;
- नाइट्रोजन का इस्तेमाल फसल तैयार होने पर तथा मिट्टी की क्षमता के अनुरूप करना;
- ज्यादा नाइट्रोजन का उपयोग न करना;
- जुताई व फसल अवशेषों का प्रबन्धन;
- कम जुताई या जुताई नहीं करना।

खेतों में देशी खाद व नाइट्रोजन–जनित पौधे लगाने से

किसान के अनुभव

मीरा देवी ने बदलते मौसम से किया समझौता

उत्तर प्रदेश के जिला गोरखपुर ब्लॉक कैम्पियरगंज, ग्राम जनकपुर की मीरा देवी एक जागरूक किसान है जो खेती की सारी जिम्मेदारी स्वयं ही उठाकर अपने पूरे परिवार का भरण–पोषण करती हैं। उनके पास कुल एक हेक्टेयर जमीन है जिसमें वे विभिन्न फसले लगाती हैं जैसे गेहूं, सरसों, मटर, चना, जौ, भिण्डी, लौकी, मक्का, करेला, मिर्च, धान, मूंगफली, नेनुआ, लौकी, मक्का आदि।

बदलते मौसम ने मीरा की खेती को भी प्रभावित किया परन्तु अपनी सूझ–बूझ और नित नया सीखने की उत्कंठा ने मीरा को इस कठिन समय से उबरने की राह दिखाई जोकि मीरा अपनी जुबानी स्वयं ही बताती हैं–

जलवायु परिवर्तन की समझ

जलवायु में परिवर्तन सचमुच हमारी कृषि को प्रभावित कर रहा है। पिछले साल जल्दी बारिश होने की वजह से धान की बुवाई, मूंगफली व अरहर की फसल प्रभावित हुई थी क्योंकि गीली मिट्टी में बीज अंकुरित नहीं हो सके और इस वर्ष मानसून इतनी देर में आया–सावन (जुलाई) के अन्त में, कि हमारी धान का एक तिहाई बेहन (छोटी पौध) सूख गया। मुझे नुकसान का अंदाजा तब हुआ जब मैंने अक्टूबर में फसल काटी।

पिछला साल सचमुच बहुत अलग रहा। इसमें भारी बाढ़ आई थी, एक बार जून के अन्त में खेतों में इतना पानी भर गया था कि फसल पक नहीं सकी और सूख गई। बड़ा भारी नुकसान हुआ था। पिछले साल जब मानसून जल्दी आया था, मेरी 6–7 बीघे धान की फसल का नुकसान हुआ था। मैंने धान के बीज, बुआई व निराई में कुल 6000 रुपये की लागत लगाई थी और मुझे बदले में कुछ भी नहीं मिला।

यह सारा नुकसान मानसून के बदलाव अथवा जलवायु के परिवर्तन का परिणाम है। मैं जानवर भी पालती हूं और पिछले साल लगातार तापमान व बारिश में बदलाव होने के कारण मेरी तीन मुर्गियां व तीन बकरियां गर्मी और उमस की बीमारियों से मर गई। मेरे पास एक भैंस है, मौसम के बदलाव ने उसके दुग्ध उत्पादन को प्रभावित किया है। पहले भैंस 8 लीटर दूध देती थी लेकिन लम्बे समय तक पड़ने वाली गर्मी की वजह से यह केवल 3–4 लीटर ही दूध देती है जिससे 60–70 रुपये प्रतिदिन का नुकसान होता था। सब्जी की खेती भी प्रभावित हुई। पिछले साल अचानक बारिश से करेले व नेनुए के उत्पादन में कुल 1500 रुपये का नुकसान हुआ।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से निपटने हेतु अनुकूलन

यद्यपि प्रभाव बहुत अधिक और पहले से अनुमानित नहीं है लेकिन पिछले कुछ वर्षों में गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप द्वारा दिए गए प्रशिक्षण की सीख द्वारा हमने अपनी फसलों का जलवायु परिवर्तन की स्थितियों के हिसाब से प्रबन्धन किया है। इस वर्ष कम बारिश की वजह से मैंने मंसूरी धान की जगह जल्दी पकने वाली नरेन्द्र 97 की किस्म लगाई है, जोकि मैं 90 दिनों में काट लूंगी, जब तक कि बाढ़ आएगी। धान की परम्परागत किस्में– टांगुन, मडुआ, सावां और अरहर (दाल) तापमान के बदलाव और आर्द्रता को सहने वाली होती हैं, तो यदि मौसम साथ नहीं देता है तो मैं अपने परिवार के खाने के लिए कुछ न कुछ तो प्राप्त कर ही लूंगी। इस बार मक्के की फसल मैंने एक बीघे में उगाई है। मैंने 1000 से 1200 रुपये खर्च किए और प्रत्येक बाली से 15 रुपये कमाए। पारम्परिक किस्मों की बुआई से जोकि ज्यादा सहनशील है, और विभिन्न फसल चक्र अपनाकर मैं अब साल में 3 फसल ले रही हूं और बदलते मौसम में भी स्थायित्व बना सकती हूं।

जानवरों में भी मैंने किस्मों का बदलाव किया है और अब मैं पारम्परिक किस्मों को प्रधानता देती हूं क्योंकि फसलों की ही तरह पारम्परिक किस्मों के जानवर जलवायु परिवर्तन की स्थितियों में ज्यादा प्रतिरोधी क्षमता वाले होते हैं। पिछले 2–3 सालों से मैंने महसूस किया है कि रबी के मौसम में गर्म हवा के कारण गेहूं की फसल प्रभावित हो रही है। गेहूं को पकने के लिए लम्बे समय तक कम तापमान की आवश्यकता होती है। इसलिए इस साल गेहूं की जगह पर मैंने एक एकड़ भूमि में आम और केला की मिश्रित खेती शुरू की है। आम का पेड़ तेज हवाओं से केले की सुरक्षा करता है। मैंने खाद्यान्न फसलों के बदले फल वाले पेड़ों की खेती शुरू कर दी है और खाद्यान्न मैं बाजार से खरीदती हूं। लेकिन मुझे पता नहीं कि आगे मौसम का बदलाव मेरी फसलों के वृक्ष पर क्या प्रभाव डालेगा।

मिट्टी की गुणवत्ता बढ़ती है और नाइट्रोजन का पुनर्चक्रीयकरण होता रहता है। समय प्रबन्धन इसमें बहुत महत्वपूर्ण होता है। आवश्यकता व मात्रा के अनुरूप ही नाइट्रोजन का प्रयोग करना चाहिए वरना यह गैस में तब्दील होकर उत्सर्जन करने लगता है। अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि आधुनिक खेती की तुलना में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन जैविक खेती में 36 प्रतिशत कम होता है। इसी प्रकार इन दोनों खेती पद्वतियों में लागत व लाभ में भी स्पष्ट अंतर देखने को मिलता है। रसायन आधारित खेती में लागत अधिक है और जलवायु परिवर्तन के लिए नुकसान भी अधिक है जबकि जैविक खेती मे लागत भी कम है और नुकसान भी कम है। सटीक व उपयुक्त प्रयासों से इस नुकसान को और भी कम किया जा सकता है।

पशु प्रबंधन, चरागाह व चारे की उपलब्धता

- प्रजनन व उत्पादकता बढ़ाने हेतु;
- दुधारू पशुओं में प्रजनन द्वारा कार्यक्षमता बढ़ाना;
- देशी नस्लों को बढ़ावा;
- चरागाह में दलहनी फसलें लगाना;
- गोबर का उचित प्रबन्धन करना (बायोगैस या खाद बनाकर)।

सभी ग्रीनहाउस गैसों में 14 प्रतिशत उत्सर्जन मिथेन गैस का होता है। कहा जाता है कि इसमें जानवरों की प्रमुख भूमिका है। कृषि में स्थायित्व के लिए पशु उसका एक आवश्यक अंग है तथा जैविक खेती के लिए एक अनिवार्य तंत्र, इसलिए खेती को जानवरों से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जानवरों में चबाने या जुगाली करने की प्रक्रिया से मिथेन उत्सर्जित होता है जबकि इसका उनके पाचन तंत्र से सीधा सम्बन्ध होता है। अतः इसमें रूकावट नहीं डाली जा सकती है। हां, कुछ तरल पोषक तत्वों को देकर इनकी अवधि में कमी लाई जा सकती है। इनके गोबर को समुचित प्रबन्धन द्वारा अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है, जिससे इनके उत्सर्जन की प्रक्रिया कम हो जाए। बायोगैस व अनेक प्रकार की जैविक खादें खेती के लिए उपयोगी होती हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव कम करने के लिए देशी नस्लों को बढ़ावा देना होगा। विदेशी नस्लों के जानवरों की कार्यक्षमता व गर्मी, सर्दी, पानी सहन करने की क्षमता कम होती है। इन सबके प्रभाव से इनकी प्रजनन क्षमता व उत्पादकता पर सीधा असर पड़ता है। रोग व बीमारियां भी इन्हें ज्यादा होती हैं जिनका प्रभाव इनके अल्प जीवन के रूप में परिणत होता है। देशी नस्लें विशेषकर दुधारू गायों से मिथेन का उत्सर्जन कम होता है, ऐसा कई अध्ययनों में पाया गया। जानवरों के भोजन व उसके प्रकार में जो अन्तर होता है, वह मिथेन के उत्सर्जन हेतु उत्तरदायी है।

मिट्टी की उर्वरता बढ़ाना व बंजर भूमि का जीर्णोद्धार

- पोषक तत्व द्वारा उर्वरता बढ़ाना;
- देशी व जैविक खादों का प्रयोग;
- मृदा संरक्षण तकनीक द्वारा मिट्टी के क्षरण व कार्बन व खनिजलवण को कम करना;
- फसल अवशेषों से मल्चिंग करना;
- पानी का संरक्षण;
- मिट्टी के जैविक तत्व कार्बन का पृथक्करण।

जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को कम करने में कृषि दो तरीके से महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है–एक तो ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कम करके, दूसरे वातावरण में से कार्बन–डाई–आक्साइड को मिट्टी अवशोषित करके। जैविक कृषि, स्थाई कृषि, बिना जुताई के कृषि, कृषि वानिकी आदि ऐसी तकनीकें हैं जोकि मिट्टी के क्षरण को रोकती हैं और कार्बन के नुकसान को लाभ में परिवर्तित कर देती हैं। जैविक खेती इन दोनों ही माध्यमों से जलवायु परिवर्तन में कमी लाने के लिए सक्षम है।

विभिन्न कृषि गतिविधियों द्वारा मिट्टी में कार्बन का पृथककरण

गतिविधि	मिट्टी में कार्बन का अवशोषण (कि.ग्रा./हे.)
कम्पोस्ट	1000 से 2000
बिना जुताई	100 से 500
फसल चक्र	0 से 200
खाद	0 से 1400
कवर + फसल चक्र	900 से 1400
कम्पोस्ट + कवर +फसल चक्र +बिना जुताई	2000 से 4000

जैविक खेती में जो सबसे महत्वपूर्ण आयाम है वह यह कि इसमें किसानों के ज्ञान और कौशल को प्राथमिकता दी जाती है। उसके निरीक्षण, अनुभव व अनुमानों को खेती का आधार माना जाता है। इसीलिए बदलती परिस्थितियों में वह अपने ज्ञान व कौशल से सामंजस्य बैठा पाता है अथवा प्रयास कर पाता है, जबकि रसायन आधारित बाजार पर निर्भर खेती में किसान अपने ज्ञान का समावेश नहीं कर पाता और नुकसान उठाने को मजबूर होता है।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव को कम करने के कुछ उपाय

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभावों को कम करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाने होंगे, जिनमें कुछ मुख्य इस प्रकार हैं–

फसल उत्पादन हेतु नई तकनीकों का विकास

गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के अध्यक्ष डॉ. शिराज वजीह का कहना है कि फसलों के सुरक्षित व समुचित उत्पादन हेतु ऐसी किस्मों की खेती को बढ़ावा देना होगा जो नई फसल प्रणाली व नये मौसम के अनुकूल हो। इसके लिए ऐसी किस्मों को विकसित करना होगा जो अधिक तापमान, सूखा और पानी में डुबाव होने पर भी सफलतापूर्वक उत्पादन कर सकें। आने वाले समय में ऐसी किस्मों की जरूरत होगी जो उर्वरक और सूर्य–विकिरण उपयोग के मामले में अधिक कुशल हों। लवणीयता और क्षारीयता को सहन करने वाली किस्मों को भी ईजाद करना होगा। अनेक पारम्परिक व प्राचीन प्रजातियां ऐसी मौजूद हैं, उन्हें ढूंढना होगा व उनका संरक्षण करना होगा।

सस्य विधियों में परिवर्तन

नई फसल और नये मौसम के अनुसार हमें बुआई के समय में भी बदलाव लाने होंगे ताकि तापमान का प्रभाव कम हो। फसलों के कैलेण्डर में कुछ बदलाव लाकर गर्म मौसम के प्रकोप से बचना व नम मौसम का अधिक उपयोग करना होगा। मिश्रित खेती व एंटरक्रापिंग करके जलवायु परिवर्तन से निपटा जा सकता है। कृषि वानिकी अपनाना जलवायु परिवर्तन की अच्छी काट साबित होगा। यह केवल वातावरण में मौजूद कार्बन को सोखने का काम ही नहीं करेगी वरन् इससे मिट्टी की उर्वरता बढ़ेगी व आर्थिक–सामाजिक लाभ भी प्राप्त होगा।

खेतों में जल का संरक्षण

तापमान वृद्धि के साथ–साथ धरती पर मौजूद नमी समाप्त होती जाएगी। ऐसे में खेती में नमी का संरक्षण करना और वर्षा जल को एकत्र कर सिंचाई हेतु उपयोग में लाना आवश्यक होगा। जीरो टिलेज या शून्य जुताई जैसी तकनीकों का इस्तेमाल कर पानी के अभाव से निपटा जा सकता है। शून्य जुताई के कारण धान और गेहूं की खेती में पानी की मांग की कमी देखी गई है जबकि उपज में बढोतरी हुई है और उत्पादन लागत 10 प्रतिशत तक कम हो गया है। इससे मिट्टी में जैविक पदार्थों की बढोतरी भी होती है।

इसी प्रकार ऊंची उठी क्यारियों में रोपाई करना भी एक बेहतरीन तकनीक है, जिसमें पानी के उपयोग की क्षमता बढ़ जाती है। जलभराव कम होता है, खरपतवार कम आते हैं, लागत कम लगती है व लाभ ज्यादा होता है।

समग्रित खेती

आज खेती की सबसे बड़ी मांग यही है। जलवायु परिवर्तन के दृष्टिकोण से खेतों में विविधता तथा फसलों के साथ वृक्षों व जानवरों का संयोजन बहुत मायने रखता है। अब तक अनुभवों तथा अध्ययनों में भी यह पाया गया कि जहां समग्रता थी वहां नुकसान का प्रतिशत कम रहा जबकि जहां एकल फसलें अथवा केवल पशुओं पर निर्भरता थी, वहां नुकसान ज्यादा हुआ। खेती में समग्रता किसान को आत्मनिर्भर बनाती है, बाजार पर उसकी निर्भरता कम होती है तथा कठिन समय में भी उसकी खाद्य सुरक्षा बनी रहती है क्योंकि एक अथवा दो गतिविधियों के नुकसान से पूरी प्रक्रिया नष्ट नहीं होती। खेती में समग्रता अर्थात घर–पशुशाला–खेत के बीच उचित सामंजस्य व इनकी एक–दूसरे पर निर्भरता। आज जलवायु परिवर्तन से होने वाले कृषि के नुकसान को कम करने के साथ ही कृषि द्वारा किए जाने वाले गैसों के उत्सर्जन में कमी लाने में भी समग्र खेती मददगार साबित हो रही है। इस प्रकार जैविक अथवा स्थायी कृषि को अपनाकर कृषि द्वारा होने वाले ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम किया जा सकता है।

(लेखक गोरखपुर एनवायरमेंटल एक्शन ग्रुप के मीडिया समन्वयक हैं।)
ई–मेल : jitendraadf@gmail.com

सदस्यता कूपन

मैं/हम का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहती हूं/चाहते हैं।
शुल्क : **कुरुक्षेत्र** एक वर्ष के लिए 100 रुपये, दो वर्ष के लिए 180 रुपये, तीन वर्ष के लिए 250 रुपये का
(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)
डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।
कृपया ध्यान रखें, आपका डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर निदेशक, प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय हो।
नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....
पता .....
..... पिन .....
इस कूपन को काटिए और शुल्क सहित इस पते पर भेजिए :
विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक
प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड–4, तल–7, रामकृष्णपुरम,
नई दिल्ली–110 066

बढ़ता तापमान घटती पैदावार

मयंक श्रीवास्तव

अगर देखा जाए तो विश्व की करीब एक चौथाई जमीन बंजर हो चुकी है और यही गति रही तो सूखा प्रभावित क्षेत्र की करीब 70 प्रतिशत जमीन कुछ ही समय में बंजर हो जाएगी। यह खतरा इतना भयावह है कि इससे विश्व के 100 देशों की एक अरब से ज्यादा आबादी का जीवन संकट में पड़ जाएगा। पर्वतों से विश्व की आधी आबादी को जल मिलता है। हिमखण्डों के पिघलने, जंगलों की कटाई और भूमि के गलत इस्तेमाल के चलते पर्वतों का पर्यावरण तंत्र खतरे में है।

प्राकृतिक पर्यावरण का महत्व वर्तमान समाज में स्वयं एक मुद्दा बनकर सामने उभर रहा है। अनवरत बढ़ती जनचेतना, वायु व जल प्रदूषण, गैस दुष्प्रभाव, ओजोन परत की समस्या, कचरा व्यवस्थापन, अति जनसंख्या तथा तेल रिसाव आदि से सभी समस्याएं जीवन की गुणवत्ता व पृथ्वी के अस्तित्व का संभावित चिन्ह प्रस्तुत करती हैं। पर्यावरण जोकि पृथ्वी पर पाए जाने वाले जीवधारियों के आवरण या खेल के संबंधों को प्रतिपादित करता है, विविध प्रकार से जीवधारियों को प्रभावित कर स्वयं जीवधारियों से प्रभावित भी होता है। यह विकास एवं विनाश की एक समग्रकारी व्यवस्था है जो संतुलन को स्वयं प्राकृतिक प्रकार्यों के माध्यम से बनाए रखती है। दिनोंदिन मानव की ज्यादा बलवती होती विकास की चाह, अंतरिक्ष तक पहुंचते आदमी के कदम, रोजाना ही नए–नए आविष्कारों की भरमार। यह सब सुनने में कितना अच्छा लगता है, लेकिन क्या हमने कभी यह भी जानने की कोशिश की है कि चारों तरफ होती यह प्रगति किस कीमत पर हो रही है। लगभग 40 लाख साल पहले आदमी की उत्पत्ति धरती पर हुई। इसके बाद से ही मानव जाति की नई–नई आवश्यकताओं तथा सुख–सुविधा के लिए धरती प्रकृति और पर्यावरण हर जगह पर मनुष्यों की निर्भरता बढ़ती ही गई। जनसंख्या में होती निरंतर वृद्धि इस निर्भरता तथा संसाधनों के असीमित दोहन को बढ़ाने में और मददगार बनी। इसी प्रदूषण के परिणामस्वरूप आज समुद्र का जलस्तर लगातार बढ़ रहा है।

वर्ष
davp 22201/13/0020/0910

रवशाली व खुशहाल

60

हमारे गणतंत्र के

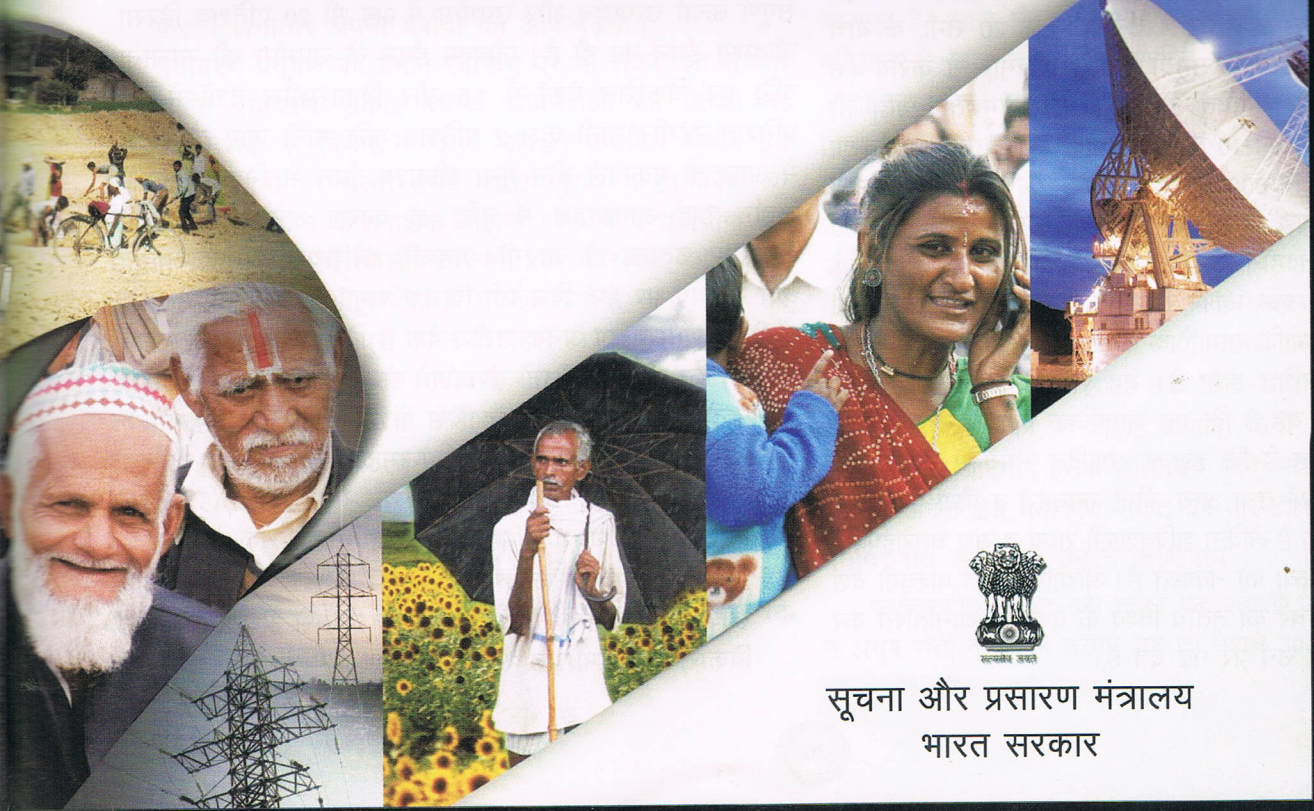

सूचना और प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार

KH-3/10/2

देखा जाए तो पर्यावरण संकट का प्रथम व सबसे बड़ा कारण उच्च उपभोक्तावादी संस्कृति है। यह उपभोक्तावादी संस्कृति ऐसे प्रलोभनकारी उद्योग को विकसित करती है जोकि सेवाओं व वस्तुओं से संबंधित अभीष्ट इच्छा की पूर्ति करता है। इस उपभोक्ता संस्कृति का मूल उद्देश्य इसमें निहित होता है कि वह अधिक से अधिक मात्रा में अपनी जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु पर्यावरण संसाधनों का दहन कर सके। वह इसे जन्मजात अधिकार के रूप में देखता है तथा भौगोलिक अध्येता भी इस दिशा में पर्यावरणवाद व भविष्यवाद की द्वंदता को स्वीकार करते हैं क्योंकि व्यक्तियों की अधिक आत्मीयता, प्राकृतिक उद्देश्यों को नकारती है। भारत सहित पूरे विश्व में वन क्षेत्रों में लगातार गिरावट आ रही है। दुनिया के करीब 30 प्रतिशत भाग पर वन है जिसमें ज्यादा हिस्सा बड़े देश समेटे हुए हैं।

विश्व का आधे से अधिक समुद्रतटीय पर्यावरण तंत्र गड़बड़ा चुका है। गड़बड़ी की यह दर यूरोप में 80 प्रतिशत और एशिया में 70 प्रतिशत तक पहुंच चुकी है। दुनियाभर की करीब एक चौथाई मूंगे की चट्टानें नष्ट हो जाएंगी और समुद्री जीवों का जीवन संकट में होगा। आंकड़े बताते हैं कि हाल के दिनों में वायुमण्डल में मिलने वाली कार्बन–डाई–आक्साइड गैस की मात्रा तेजी से बढ़ी है। वायुमंडल में जाकर यह गैस 100 वर्षों तक ज्यों की त्यों बनी रहेगी जो काफी खतरनाक साबित हो सकती है। वर्ष 1900 के मुकाबले समुद्री तल करीब 10 से 20 सेंमी. के बीच बढ़ चुका है। इसके कारण समुद्री हवाओं की मार से करीब 4.6 करोड़ लोग प्रतिवर्ष प्रभावित होते हैं। यदि समुद्रतल बढ़ा तो इसकी चपेट में विश्व की 10 करोड़ आबादी आ जाएगी। पर्यावरण के नष्ट होने से करीब 800 करोड़ से ऊपर की प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं और यह सिलसिला जारी रहा तो करीब 11,000 प्रजातियों के विलुप्त होने का खतरा बढ़ जाएगा।

पर्यावरण संकट एक प्रकार से अपने विविध स्वरूपों के कारण सामाजिक संकट है जोकि सामाजिक संगठन की संरचना में परिवर्तनों की वजह से अभिलक्षित होता है। यह सामाजिक संकट क्यों है, इसका प्रथम कारण यह है कि यह सामाजिक रूप से उत्पन्न होता है। दूसरा कारण यह है कि इसका संभावित समय में नकारात्मक परिणाम मानव प्राणियों तथा अन्य जीवों, जानवरों व पौधों पर पड़ता है। यह प्रभाव वैश्विक है लेकिन शक्तिशाली राज्य व संघ चतुराईपूर्वक इस सार्वभौमिक समस्या को नकारते हैं। औद्योगिकीकृत पश्चिमी देश अपने पर्यावरणीय कचरे को तृतीय विश्व के देशों में स्थानांतरित कर संकट का सारा श्रेय उन पर मढ़ देते हैं।

पर्यावरण प्रदूषण का कृषि पर प्रभाव

बढ़ती मानवीय आवश्यकताओं के कारण औद्योगिकीकरण, परिवहन, खनन में वृद्धि तथा ईंधन हेतु लकड़ियों के प्रयोग ने वनों के विनाश को बढ़ाया है। विश्व की करीब 25 अरब आबादी अभी भी आधुनिक ऊर्जा सेवाओं से वंचित है। दक्षिण और दक्षिण–पूर्व एशिया के लगभग 2 अरब लोग अब भी ईंधन के रूप में लकड़ी का उपयोग करते हैं जिससे वनों का विनाश बढ़ा है। संपूर्ण ऊर्जा उत्पादन और उपभोग में अब भी 20 प्रतिशत हिस्सा जीवाश्म ईंधन का ही है। जीवश्म ईंधन के उपभोग की सालाना वृद्धि दर विकसित देशों में 1.5 और विकासशील देशों में 3.6 प्रतिशत रहेगी। यानी कुल 2 प्रतिशत वृद्धि मानी जाए तो 2055 में आज के मुकाबले तीन गुना जीवाश्म ईंधन से निकलने वाली कार्बन–डाई–आक्साइड में वृद्धि के कारण अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाएंगी। पहाड़ी, ग्लेशियरों, अंटार्कटिक व ध्रुवों की वर्ष भर बर्फ पिघलेगी जिससे समुद्र के जलस्तर में वृद्धि होगी परिणामस्वरूप अनेक तटीय देश व द्वितीय देश जलमग्न हो जाएंगे। इन जीवाश्म ईंधनों के जलने से सल्फर–डाई–आक्साइड व नाइट्रोजन–डाई–आक्साइड गैस में भी वृद्धि होती है जोकि अम्लीय वर्षा का कारण होती है। ताजमहल इसी अम्लीय वर्षा के क्षरण से प्रभावित है।

- बाढ़ से कृषि योग्य भूमि कम हो जाएगी।
- मिट्टी अम्लीय हो जाएगी।
- उत्पादन में तेजी से गिरावट आएगी जिससे अर्थव्यवस्था की विकास दर धीमी पड़ सकती है।

कदम–दर–कदम बढ़ते तापमान का प्रभाव

बढ़ता तापमान पृथ्वी के अस्तित्व पर खतरा बनकर खड़ा है। विशेषज्ञों ने बार–बार चेताया है कि तापमान में हर एक डिग्री से. की बढ़ोतरी पर्यावरण को नुकसान पहुंचाएगी।

एक डिग्री से. बढ़ने पर

- 5 करोड़ लोगों का जीवन तुरंत प्रभाव में आ जाएगा।
- मलेरिया, कुपोषण और वातावरण जनित अन्य परेशानियों के कारण हर साल सालाना तीन प्रतिशत लोग मरेंगे।
- ऊंचाई पर रहने वाले लोगों के ठंड से मरने की तादाद में अचानक इजाफा आ जाएगा।
- 80 प्रतिशत मूंगे की चट्टानें नष्ट हो जाएंगी।

दो डिग्री से. बढ़ने पर

- उष्ण कटिबंधीय अफ्रीका में फसलों की पैदावार 5 से 10 प्रतिशत तक गिर जाएगी।
- अफ्रीका में मलेरिया प्रभावित लोगों की संख्या 10 लाख तक पहुंच सकती है।
- एक अनुमान के मुताबिक जीव–जंतु और वनस्पति की 15 से 40 प्रतिशत तक प्रजातियों का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा।
- ध्रुवों पर पाए जाने वाले भालुओं समेत तमाम जीव–जंतुओं का अस्तित्व खतरे में आ जाएगा।

तीन डिग्री से. बढ़ने पर

- दक्षिण यूरोप में हर 10 साल में भयानक सूखे की मार पड़ सकती है।
- दुनिया में 4 अरब से ज्यादा लोग पानी की किल्लत झेल रहे होंगे।
- इसके अतिरिक्त खाद्यान्न उत्पादन में इतनी कमी आ सकती है कि दुनियाभर में 15 से 55 करोड़ लोग भुखमरी झेल रहे होंगे।
- कुपोषण से मरने वालों की संख्या 30 लाख तक पहुंच सकती है।

चार डिग्री से. बढ़ने पर

- अफ्रीका में कृषि उत्पादन 35 प्रतिशत तक गिर सकता है।
- अफ्रीका में प्रत्येक 5 में से 4 व्यक्ति मलेरिया की चपेट में आ सकते है।
- बड़े ग्लेशियर नष्ट हो सकते हैं। दुनिया की बड़ी आबादी नष्ट हो सकती है।
- समुद्र तल बढ़ने से कई कम ऊंचाई पर बसे द्वीप नष्ट हो सकते हैं।

- जलवायु परिवर्तन से मौसम की अनियमितता बढ़ेगी और फसलें लगातार अपनी बर्बादी की ओर बढ़ेंगी।

पर्यावरण प्रदूषण का प्रभाव स्वास्थ्य पर भी संकट ला सकता है क्योंकि पर्यावरण संकट, स्वस्थ जीवनशैली को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तरीके से किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है। विविध परिवर्तनों के चलते हमने खाद्य सुरक्षा व बीमारियों के निराकरण हेतु जिन कीटनाशक जैविक रसायन व तकनीक को प्रयुक्त किया है उसने किसी न किसी रूप में संकट को बढ़ाया ही है। आज विकासशील देशों में एक करोड़ से ऊपर बच्चे हर साल पांच वर्ष की आयु पूरी करने के पहले ही मर जाते हैं जिसमें अधिकांश की मौत का कारण कुपोषण, सांस की समस्या, डायरिया तथा मलेरिया जैसी बीमारियां होती हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार दुनियाभर में चालीस प्रतिशत बीमारियां पर्यावरण के नष्ट होने से होती हैं। पानी और वहां के प्रदूषण से उपजी बीमारियां हर साल विकासशील देशों के करीब साठ लाख लोगों को मार डालती है। आज मानसिक स्मृति का विलोपन, चिड़चिड़ापन, स्वस्थ चिंतन का अभाव, शरीर के संवेदनशील अंगों का कार्य बंद कर देना आदि प्रदूषण के ही कारण हैं।

पर्यावरणीय संकट आज जल संकट के रूप में उभरकर सामने आ रहा है। आज प्रौद्योगिकी प्रदूषण और खनिज तेल व कचरे के बहिस्राव ने जल को सीधा प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त औद्योगिक विकास ने प्राकृतिक संसाधन के रूप में जल की मात्रा को दिनों–दिन कम कर दिया है। आज पूरे विश्व की आबादी में करीब एक अरब लोगों को पानी नहीं मिलता है। विकासशील देशों में करीब 22 लाख लोग गंदे पानी से पैदा होने वाली बीमारियों के कारण मर जाते हैं। धरती के संपूर्ण जल में स्वच्छ जल का प्रतिशत 0.3 से भी कम है। आने वाले अगले 20 वर्षों में क्रियाकलाप हेतु 57 फीसदी अतिरिक्त जल की आवश्यकता होगी। अतः इस बात की संभावना व्यक्त की जा रही है कि 2025 तक आते–आते एक तिहाई देशों में रहने वाली विश्व की दो तिहाई आबादी पानी के गंभीर संकट से जूझती नजर आएगी। इसके अतिरिक्त कृषि, मत्स्य संसाधन, व्यापार इत्यादि अनेक क्षेत्र पर्यावरण संकट की मार झेलते हैं।

पर्यावरणीय संकट से उबरने के उपाय

पर्यावरणीय संकट इस कदर बढ़ रहा है कि आने वाले दिनों में अगर सही कदम न उठाए गए तो धरती अपने विनाश की ओर

अग्रसर हो सकती है। अतः आवश्यकता है सबको मिलकर पहल करने की चाहे वे विकसित देश हो या विकासशील देश–

- औद्योगीकृत कृषि को कम करना होगा क्योंकि यह तो सत्य है कि यह कम लागत में खाद्य उत्पादन को बढ़ाता है लेकिन लंबे समय बाद पृथ्वी की क्षमता को कम करता है। इसके अंतर्गत व्यक्ति उच्च प्रौद्योगिकी के माध्यम से खतरनाक रसायनों को प्रयुक्त करता है जो स्वास्थ्य व पर्यावरण के लिए संकट उत्पन्न करता है।
- बड़े बांधों के निर्माण को रोकना होगा। बांध पर्यावरण हेतु घोर संकट पैदा करते हैं क्योंकि यह कृषि योग्य भूमि, जंगल व देशज लोगों की सांस्कृतिक–आर्थिक परिस्थिति का विनाश करता है तथा इससे उत्पन्न असंतुलन एक भयावह संकट को जन्म देता है।
- जनसंख्या विस्थापन को भी रोकना होगा क्योंकि अपने परंपरात्मक गृह से विस्थापित लोग तकनीकी समस्याएं तो उत्पन्न करते हैं साथ ही विविध असामंजस्यपूर्ण कार्यों से पर्यावरण को क्षति पहुंचाते हैं।
- कर्ज और संरचनात्मक सामंजस्य की व्याप्त समस्या का निदान ढूंढना होगा ताकि प्राकृतिक संसाधनों के बढ़ते दोहन को रोका जा सके।
- विषैले पदार्थों व रेडियोधर्मी कचरे के बढ़ते बाजार को रोकना क्योंकि ये पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं।
- राष्ट्र की सुरक्षा हेतु सेना पर्यावरण नियामकों की अवहेलना करती है व अपने क्रियाकलापों के दौरान ईंधन, कचरा, अखंडित गोला–बारूद व खतरनाक हथियार फेंकती है जो पूर्णरूपेण पर्यावरण शत्रु होता है।
- परमाणु परीक्षण वैश्विक पर्यावरण को काफी क्षति पहुंचाते हैं। परमाणु हथियार विविध किरणें मुक्त करते हैं जोकि कैंसर, प्रजनन निष्फलता, गर्भपात आदि समस्याएं पैदा करती हैं।
- झूम खेती कृषि प्रणाली पर नियंत्रण स्थापित करना होगा व वनों के काटने वालों को कठोर दण्ड तथा वृक्षारोपण के कार्यक्रम को अनवरत जारी रखना होगा।
- निर्धनता व बेरोजगारी के विरुद्ध बढ़ते दुश्चक्र को कम करना होगा।
- बढ़ते नगरीकरण को रोकना होगा ताकि स्वस्थ संतुलन स्थापित किया जा सके।
- उस स्तर की प्रौद्योगिकी उच्चता हासिल करनी होगी जो पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखती हो लेकिन इसमें सबसे प्रमुख भूमिका सूचना व संप्रेषण प्रौद्योगिकी की हो सकती है।

सूचना और संप्रेषण प्रौद्योगिकी पर्यावरणीय संकट हेतु प्रबंधन का कार्य कर सकती है। सूचना तंत्र व सैंसर नेटवर्क द्वारा यह आपातकालीन पर्यावरण संकट चाहे यह प्राकृतिक हो या मानव निर्मित, का निदान चेतावनी, जागरुकता तथा दूरसंचार का तीव्र प्रयोग करके सूचना को सही ढंग से प्रसारित किया जा सकता है। यह सार्वजनिक क्षेत्र, निजी क्षेत्र अकादमिक जगत के मध्य पर्यावरण संकट और उत्पन्न चुनौतियों पर एक गठबंधन आयोजित कर सकता है जो पर्यावरण से संबंधित सतत स्वस्थ रणनीति, कार्ययोजना, समाज को संरक्षण और सुरक्षा योगदान दे सकता है। यह वर्तमान व भविष्य के अर्थतंत्र का एक महत्वपूर्ण केंद्रीय आधार है तो सतत विकास हेतु अत्यावश्यक आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक प्रतिमानों को पुनः निर्मित कर सकता है। यह ऊर्जा क्षमता के बचाव हेतु पावर का निर्माण या वितरण या इंटेलिजेंट तंत्र का निर्माण ही नहीं करता है बल्कि यह उपभोक्ता के जटिल व्यवहार प्रतिमान व विसंगतियों को दूर करता है। यह अतिशय ऊर्जा का प्रयोग करने वाले लोगों को प्रभावी तरीके से ऊर्जा संरक्षित करने के लिए सशक्त करता है। इससे जटिल पावर तंत्र पर नियंत्रण स्थापित होता है और एक नए समाज के निर्माण में भागीदारी होती है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि भविष्य में हम एशियाई धुंध के नीचे रहे, गैस चैंबरों के सदस्य बनें या पर्यावरण से सुरक्षा हेतु एक विशेष प्रकार के वैज्ञानिक कोट को पहने या डाक्टरों की सलाह पर दवाओं का सेवन करें, इससे अच्छा है कि हम अभी भी आत्मिक रूप से सचेत हो जाए अन्यथा चिंतन–मंथन और विश्व स्तर पर राजनीतिक संवाद का कोई फायदा नहीं होगा जो हमेशा से प्रेरित होता है और शायद जलवायु पर कार्य कर रही संस्था आईपीसीसी को 2007 का नोबल मिलना इसकी शुरुआत है। लेकिन अब भी इसमें उस जागरुकता की आवश्यकता है और सभी को मिलकर काम करने की महती जरूरत है। तभी हमारे देश का और देश की कृषि का विकास हो सकता है।

(लेखक अर्थशास्त्र के प्रवक्ता, ग्रामीण मामलों के जानकार तथा उ.प्र. उत्तरांचल आर्थिक विकास परिषद के सदस्य हैं।)

ई–मेल : mayank5782@gmail.com

लेखकों से

कुरुक्षेत्र के लिए मौलिक, अप्रकाशित लेखों का स्वागत है। रचना दो प्रतियों में टाइप की हुई हो (Krutidev 010 CD में) और उसके साथ ई–मेल तथा मौलिकता का प्रमाण–पत्र संलग्न हो। **कुरुक्षेत्र** में साहित्यिक रचनाएं प्रकाशित नहीं की जाती हैं। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाएं। लेख वरिष्ठ संपादक, **कुरुक्षेत्र** कमरा नं. 655, 'ए' विंग, गेट नं. 5, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110011 के पते पर भेजें।

फल-सब्जी परिरक्षण स्वरोजगार का उत्तम साधन

डॉ. शारदा एवं डॉ. के. गीता

खाद्य परिरक्षण वह विज्ञान है जो खाद्य पदार्थों के खराब या नष्ट होने की प्रक्रिया को रोकता है। खाद्य पदार्थों के मौलिक आकार तथा रूप को परिवर्तित कर या अपरिवर्तित रखकर इनमें पोषण तत्वों को यथासंभव बनाए रखते हुए दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने की विधियों एवं तकनीकों को परिरक्षण कहा जाता है। इस लेख में फल-सब्जी परिरक्षण को स्वरोजगार का माध्यम बनाने के लिए कुछ फल-सब्जियों को परिरक्षित कर उत्पाद बनाने की वैज्ञानिक विधियां दी गई हैं।

भारत का विश्व के फल–सब्जी उत्पादन में क्रमशः प्रथम व द्वितीय स्थान है और वर्तमान में यहां 400 लाख टन फल व 728 लाख सब्जियों का उत्पादन हो रहा है। परन्तु मौसम में उपलब्ध मात्रा का पूरा उपयोग नहीं होने के कारण कुल उत्पादन का 25–30 प्रतिशत भाग सड़–गलकर बेकार हो जाता है क्योंकि तोड़ने के बाद इनमें धीरे–धीरे रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं। बैक्टीरिया, ईस्ट, फफूंद आदि के प्रभाव के कारण भी फल–सब्जियां सड़ने–गलने लगती हैं तथा देश में अभी इतने शीत भण्डार गृह भी नहीं हैं कि तुरन्त उपयोग न होने वाली मात्रा को भण्डारित करके खराब होने से बचाया जा सके। अतः फल–सब्जियों को सुरक्षित रखने के लिए सूक्ष्मजीवों की क्रियाशीलता को पूर्णतः नष्ट कर देना या नियंत्रित करना अनिवार्य हो जाता है। परिरक्षण की विभिन्न विधियां इन्हीं तथ्यों पर आधारित हैं यद्यपि फल–सब्जियों से विभिन्न उत्पाद बनाने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है। गृहणियां अचार, मुरब्बा, चटनी, सिरका, शरबत आदि बनाकर तथा विभिन्न फल–सब्जियों को सुखाकर रखती रही हैं परन्तु कई बार असावधानी के कारण ये उत्पाद खराब हो जाते हैं। अगर इसे बनाने के लिए वैज्ञानिक तरीके को अपनाया जाए तो इसे अधिक दिनों तक सुरक्षित रखा जा सकता है तथा इससे अतिरिक्त आय कमाई जा सकती है। फल–सब्जी परिरक्षण अपनाकर बिना किसी अतिरिक्त पैदावार के फल–सब्जी की उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है, उपभोक्ताओं को अच्छी गुणवत्ता के उत्पाद उपलब्ध कराए जा सकते हैं, खाद्य पदार्थों को भण्डारित करने की अवधि बढ़ाने से इसकी आपूर्ति बढ़ जाती है, तैयार करने में लगे समय और ऊर्जा की बचत होती है, खाद्य पदार्थों के मूल्य स्थिरीकरण में मदद मिलती है तथा लोगों का पोषण–स्तर सुधरता है। इस तरह परिरक्षण की उपयोगिता एवं महत्ता को समझा जा सकता है और फल–सब्जी परिरक्षण को स्वरोजगार का उत्तम साधन बनाया जा सकता है। फल–सब्जी परिरक्षण के निम्न घरेलू तरीके अपनाकर आमदनी बढ़ायी जा सकती है :

- सुखाना/निर्जलीकरण – पापड़, बड़ियां, चिप्स पत्तेदार सब्जियां आदि।
- नमक का उपयोग (अचार, चटनी)
- चीनी का प्रयोग (मुरब्बा जैम, जेली स्क्वैश आदि)
- तेल–मसाले का प्रयोग (अचार, चटनी)
- अम्ल का प्रयोग (साईट्रिक अम्ल खासकर मीठे उत्पाद में तथा एसिटीक अम्ल अचार–चटनी में)
- परिरक्षक रसायनों का प्रयोग (सोडियम बेजोएट तथा पोटाशियम मेटा बाई सल्फाइट)

कुछ फल–सब्जियों को परिरक्षित करके उत्पाद बनाने की वैज्ञानिक विधियां नीचे दी जा रही हैं जिसको अपनाकर ग्रामीण अपनी आय बढ़ा सकते हैं।

साबुदाने का पापड़

सामग्री	
साबुदाना	1 किलोग्राम
पानी	3 लीटर
जीरा	15 ग्राम
नमक	15 ग्राम
काली मिर्च	15 ग्राम

विधि – साबुदाने को 5–6 घण्टे तक पानी में भिगोकर रखें। जीरा तथा काली मिर्च को दरदरा कूट लें। भीगे साबुदाने में नमक, जीरा तथा काली मिर्च मिलाकर तब तक पकायें जब तक कि यह गाढ़ा घोल न बन जाए। इस घोल को चम्मच से प्लास्टिक सीट पर फैलाएं और धूप में सूखने दें। अच्छी तरह सूख जाने पर साफ डिब्बे में भण्डारित करें।

पेठे की बड़ियां

सामग्री	
धुली उड़द की दाल	1 किलोग्राम
पेठा	1 किलोग्राम
हरा धनिया	50 ग्राम
हरी मिर्च	8-10 ग्राम
अदरक	25 ग्राम
हींग	10 ग्राम
काली मिर्च	50 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	25 ग्राम
गरम मसाला	25 ग्राम

विधि – धुली उड़द की दाल को पानी में भिगोकर रात भर छोड़ दें। सुबह में उसे हींग तथा अदरक के साथ पीस लें। पेठे को छिलकर कदूकस कर लें। उड़द की दाल की तैयार पीठी में कदूकस किया हुआ पेठा, बारीक कटा हरा धनियां, बारीक कटी हरी मिर्च, अधकुटी काली मिर्च, पिसी लाल मिर्च तथा गरम मसाला मिलाकर प्लास्टिक सीट पर धूप में बड़ी–बड़ी बड़ियां डालें। अच्छी तरह सूख जाने पर डिब्बे में बंदकर भण्डारित करें।

टमाटर केचप

सामग्री	
टमाटर का रस	3 लीटर
प्याज	75 ग्राम
लहसुन	10 ग्राम
अदरक	25 ग्राम
लौंग	2 ग्राम
गरम मसाला (काली मिर्च, जीरा, दालचीनी, जावित्री)	20 ग्राम
चीनी	175 ग्राम
नमक	30 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	20 ग्राम
एसिटीक अम्ल	5–7 मि. ली.
सोडियम बेंजोएट	1 ग्राम

विधि – पके लाल टमाटर लेकर धो लें तथा पतले टुकड़े काट लें। प्याज, लहसुन को भी छिलकर छोटे–छोटे टुकड़ों में काट लें। टमाटर, प्याज, लहसुन तथा लाल मिर्च पाउडर लेकर प्रेशर कूकर में एक सीटी लगने तक उबालें। सूप चालनी से छानकर रस निकाल लें। अदरक तथा गरम मसाले को दरदरा करके एक साफ कपड़े में बांधकर पोटली बना लें। छने हुए रस को भिगोने में डालकर गरम मसाले की पोटली तथा निर्धारित मात्रा की एक चौथाई चीनी डालकर उबालें। जब रस गाढ़ा होकर करीब एक तिहाई बच जाए तो शेष चीनी तथा नमक मिलाकर थोड़ी देर उबालें। उबलते रस को प्लेट पर डालकर देखें अगर रस और गूदा अलग न हो रहा हो तो केचप तैयार समझें और गैस बंद करके एसिटीक अम्ल मिला दें। एक चम्मच में उबलते रस को लेकर सोडियम बेंजोएट घोलकर पूरे केचप में मिला दें। केचप तैयार होने की पहचान रिफ्रैक्टोमीटर द्वारा 28^0 बिम्ब देखकर भी कर सकते हैं। तैयार सामग्री को गर्म–गर्म ही बोतलों में भरकर ढक्कन लगा दें। ठण्डा करके भण्डारित करें।

आंवले का मुरब्बा

सामग्री	
आंवला	1 किलोग्राम
चीनी	डेढ़ किलोग्राम
फिटकरी	20 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	10 ग्राम

विधि – आंवले को धोकर कांटे से गोद लें तथा डूबने भर तक पानी डाल दें। फिटकरी को कूटकर उसमें डाल दें तथा 36 घण्टे तक आंवले को उसी पानी में पड़ा रहने दें। आंवले को इस घोल से निकालकर अच्छी तरह बहते पानी से धो ले। एक भिगोने में पानी उबाले। उबलते पानी में आंवले को डालकर 4–5 मिनट तक उबाले। एक भगोने में आधी चीनी लेकर पहले चीनी, फिर आंवला, फिर चीनी इस तरह इनकी परत बिछा दें और चौबीस घण्टे तक पड़ा रहने दें। दूसरे दिन आंवला और चीनी के घोल को अलग–अलग कर लें। चीनी के घोल में एक चौथाई चीनी मिलाकर उबाले तथा साइट्रिक अम्ल डाल दें। उबलते रस में आंवला डालकर गैस बन्द कर दें और आंवले को उसी घोल में 24 घंटे तक पड़ा रहने दे। तीसरे दिन घोल से आंवले को अलग करके शेष एक चौथाई चीनी घोल में मिलाकर उबाले तथा उबाल आने पर आंवला डाल दे। यह प्रक्रिया तब तक दोहराएं जब तक

रस शहद के जैसा गाढ़ा न हो जाए। ठंडा होने पर कांच के मर्तबान में भरकर भंडारित करें।

हरी मिर्च का आचार

सामग्री	
हरी मिर्च	1 किलोग्राम
सरसों तेल	1/2 किलोग्राम
इमली	200 ग्राम
सिरका	200 मि. ली.
नमक	120 ग्राम
राई	50 ग्राम
सौंफ	25 ग्राम
मेथी	25 ग्राम
हल्दी पाउडर	25 ग्राम
जीरा	10 ग्राम
काली मिर्च	10 ग्राम
अदरक	100 ग्राम
हींग	5 ग्राम

विधि – हरी मिर्च को धोकर साफ कपड़े से पोंछ लें तथा डंठल सहित दो टुकड़े कर दें। राई, सौंफ, मेथी और जीरा को बिना तेल के हल्का सेंककर दरदरा कर लें। काली मिर्च कूट लें। अदरक को छिलकर कदूकस कर लें। इमली को सिरके में भिगोकर पांच–छः घण्टे छोड़ दें और फिर चालनी से छानकर गूदा निकाल लें। कड़ाही में तेल गर्म करें तथा उसमें हींग डाल दें। कटी हुई मिर्च डालकर 4–5 मिनट पका लें। फिर नमक, इमली का गूदा, घिसा अदरक तथा सारे मसाले मिलाकर 4–5 मिनट और पका ले। ठंडा करके मर्तबान में भर ले। 5–7 दिन में अचार पककर तैयार हो जाएगा।

नींबू का स्क्वैश

सामग्री	
नींबू का रस	1 लीटर
पानी	1.2 लीटर
चीनी	1.8 किलो
पोटाशियम मेटा बाई सल्फाइट	2.4 ग्राम
एसेन्स	8 मि. ली.

विधि – नींबू का रस निकालकर रख ले। भिगोने में चीनी लेकर पानी डाले तथा उबाल ले। इस घोल को ठंडा होने दे। ठंडा होने पर उसमें नींबू का रस मिलाकर मलमल के कपड़े से छान लें। छने हुए स्क्वैश में एसेंस तथा पोटाशियम मेटा बाई सल्फाईट मिलाकर संकरे मुंह की कांच की बोतलों में भरकर भण्डारित करें।

नींबू का अचार

सामग्री	
नींबू	1 किलोग्राम
नमक	200 ग्राम
लाल मिर्च पाउडर	80 ग्राम
मेथी	20 ग्राम
जीरा	10 ग्राम
हल्दी पाउडर	10 ग्राम
तेल	100 ग्राम
हींग	10 ग्राम

विधि – नींबू को धोकर आठ टुकड़ों में काट ले तथा नमक डालकर मर्तबान में रखें। 7–8 दिन तक उसे बार–बार पलटते रहे। जीरा तथा मेथी भूनकर दरदरा कर लें। नमक मिले नींबू के टुकड़े में लाल मिर्च पाउडर, जीरा, मेथी तथा हल्दी पाउडर मिला दें। तेल में हींग डालकर धुंआ निकलने से पहले तक गर्म करें तथा ठंडा करके अचार में अच्छी तरह मिला दें। एक सप्ताह में अचार तैयार हो जाएगा।

मिक्स फ्रूट जैम

सामग्री	
फल का गूदा	4.5 किलोग्राम
चीनी	5.5 किलोग्राम
पेक्टिन	60 ग्राम
खाद्य लाल रंग	1 ग्राम
साइट्रिक अम्ल	37 ग्राम
सोडियम बेंजोएट	2.36 ग्राम
एसेंस	5 मि. ली.

विधि – अन्नानास, केला, काले अंगूर, सेब तथा पपीते के टुकड़े बराबर मात्रा में लेकर एक चौथाई पानी डालकर उबाल लें तथा पल्पर या मिक्सी में चलाकर गूदा निकाल ले। उपरोक्त चीनी की मात्रा में से 300 ग्राम चीनी लेकर उसमें पेक्टिन मिलाकर गुनगुने पानी में घोल लें। फल का गूदा तथा शेष चीनी को भिगोने में लेकर उबालें। फिर उबलते मिश्रण में साइट्रिक अम्ल तथा पेक्टिन का घोल भी मिला दें। साथ ही खाद्य रंग भी मिला दें। 105.5^0 सेन्टीग्रेड तापमान आने तक उबालें। अगर तापमापी न हो तो उबलते मिश्रण की कुछ बूंदों को एक कांच के गिलास में पानी लेकर उसमें डालें। अगर मिश्रण गिलास की पेंदी में जम जाता है तो जैम तैयार हो गया है। इसमें एसेन्स तथा

सोडियम बेंजोएट मिलाकर गर्म–गर्म चौड़े मुंह की कांच की बोतलों में भरें। ठंडा होने पर भण्डारित करें।

चूंकि राजस्थान में आंवला, हरी मिर्च, टमाटर, नींबू आदि बहुतायत में होता है। अतः मौसम में सस्ती होने पर इसे परिरक्षित कर घर की आमदनी बढ़ायी जा सकती है। 'फल–सब्जी परिरक्षण' संबंधी प्रशिक्षण सभी कृषि विज्ञान केन्द्रों, कृषि विश्वविद्यालयों तथा अन्य प्रशिक्षण केन्द्रों पर भी दिया जाता है जिसे अपनाकर मुनाफा कमाया जा सकता है।

फल सब्जी परिरक्षण संबंधी कुछ आवश्यक बातों को ध्यान में रखकर परिरक्षित उत्पाद को जल्दी खराब होने से बचाया जा सकता है तथा उसकी गुणवत्ता बढ़ाई जा सकती है। जैसे –

- परिरक्षण के लिए बिना कटे–फटे व ताजे फल लें।
- चीनी या नमक की निर्धारित मात्रा काम में लें।
- मसाले साफ करके तथा हल्का सेंककर इस्तेमाल करें।
- जैम–जेली या मुरब्बा को चीनी के साथ तेज आंच पर गर्म करें।
- पोटाशियम मेटा–बाई–सल्फाइट का प्रयोग रंगीन फलों/सब्जियों में न करें क्योंकि उसमें विरंजक गुण होता है।
- अधिक दिनों तक रखने वाले अचार में तेल की पर्याप्त मात्रा रखें।
- लौंग के फूलवाले हिस्से को इस्तेमाल के समय हटा दें अन्यथा यह उत्पाद में कालापन लाता है।

परिरक्षित उत्पाद की गुणवत्ता हमेशा बरकरार रखने से बाजार में उसकी मांग हमेशा बनी रहेगी। इस तरह फल–सब्जी परिरक्षण स्वरोजगार का उत्तम माध्यम बन सकता है।

(लेखिका कृषि विज्ञान केंद्र वनस्थली विद्यापीठ में कार्यक्रम समन्वयक हैं।)
ई–मेल : vcoff@yahoo.com

विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस
15 मार्च 2010

जागो ग्राहक जागो

वित्तीय रूप से शिक्षित बनिए, अपने निवेश को सुरक्षित रखिए!

सयानी रानी की सलाह...

वित्तीय रूप से साक्षर बनें।
आमदनी के अनुरूप व्यय/निवेश करें।
भ्रामक विज्ञापनों से गुमराह न हों।
वित्तीय अनुबंध करने से पहले संबंधित नियमों व शर्तों की जांच कर लें।
उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के प्रावधानों की जानकारी प्राप्त करें।
वस्तुओं/सेवाओं में कमी के मामले में अपने अधिकारों के लिए उपभोक्ता फोरम में शिकायत करें।
हमेशा, वस्तु/सेवा की खरीद पर रसीद प्राप्त करें।

अपने क्षेत्र के उपभोक्ता फोरम का पता करने के लिए www.ncdrc.in पर लॉग ऑन करें।

राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्पलाइन सं. **1800-11-4000** (शुल्क मुक्त)
(बीएसएनएल/एमटीएनएल लाइनों से) अथवा
011-27662955, 56, 57, 58 (सामान्य कॉल प्रभार लागू)
(पूर्वान्ह 9.30 बजे से सायं 5.30 बजे तक - सोमवार से शनिवार)

सत्यमेव जयते

जनहित में जारी :
उपभोक्ता मामले, खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय
उपभोक्ता मामले विभाग, भारत सरकार,
कृषि भवन, नई दिल्ली - 110 001, वेबसाइट : www.fcamin.nic.in

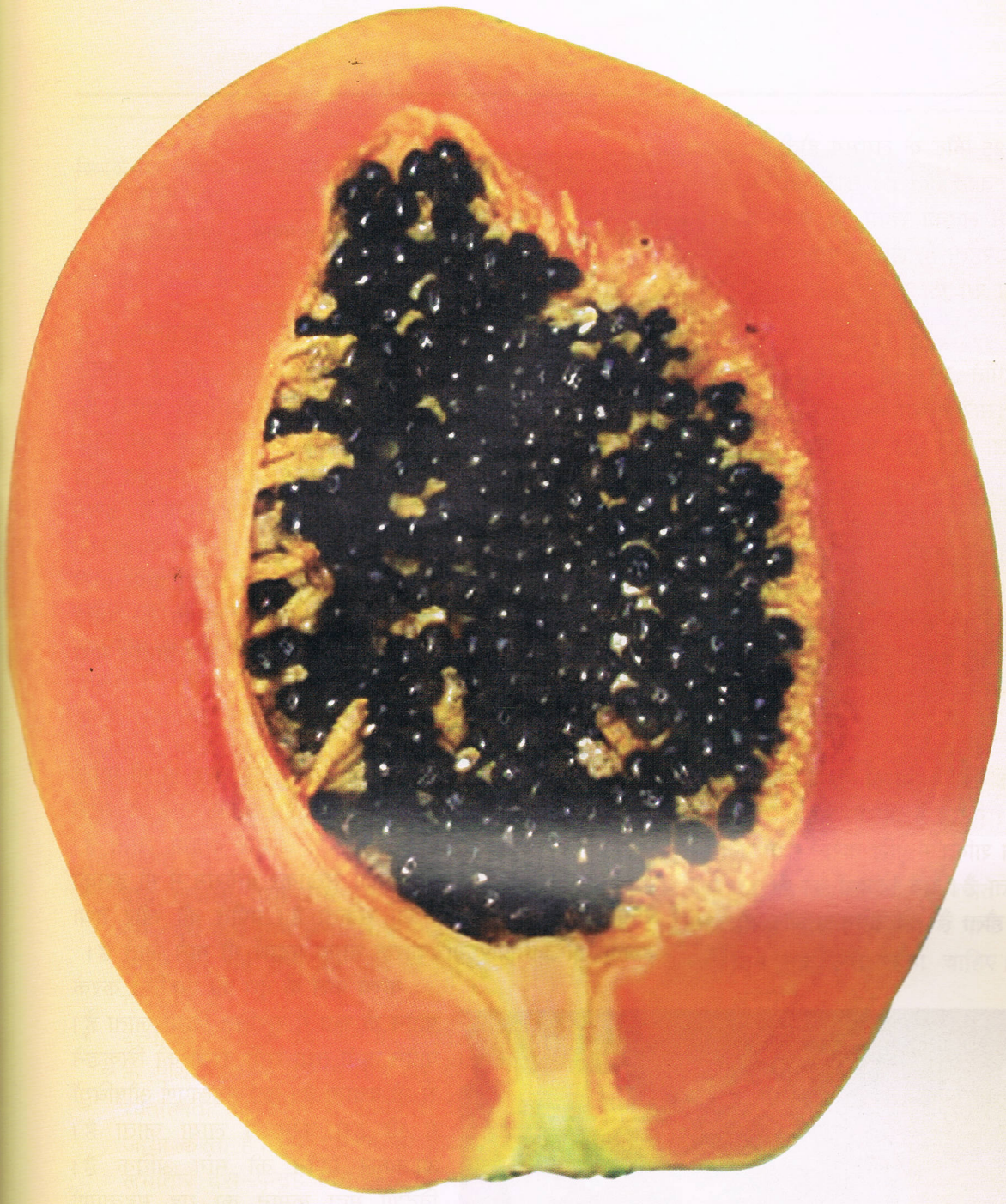

स्वास्थ्य के लिए उपयोगी पपीता

डॉ. अनामिका प्रकाश

कहा जाता है कि अमेरिका के दक्षिणी इलाकों में पैदा होने वाले इस गुणकारी फल को कोलम्बस अपनी द्वितीय यात्रा में पुर्तगाल ले गया था, और वहीं से यह एशिया महाद्वीप में फैल गया। आज यह फल भारत में पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त किए हुए है। पौष्टिक होने के साथ ही पाचक फलों में इसका प्रमुख स्थान है। महत्वपूर्ण रोग निवारक तत्वों का भंडार होने के कारण कई रोगों में इसका उपयोग आप औषधि के रूप में भी कर सकते हैं। हमारे देश के विभिन्न प्रांतों में अब इसकी खेती बहुतायत में होने लगी है।

पपीते के पेड़ की लम्बाई 25 फीट के लगभग होती है। इसके पत्ते अरण्डी के पत्तों की तरह होते हैं। छाल का रंग सफेद होता है, और पत्तों के बीच में लटका रहता है। कच्चे फल का छिलका हरा और गूदा सफेद रहता है, लेकिन पक जाने के बाद इसका छिलका कुछ केसरिया रंग का होता है।

पपीते के गुण

आयुर्वेद विशेषज्ञों ने पपीते को कई महत्वपूर्ण गुणों का आगार बताया है। उनके अनुसार कच्चा पपीता मलरोधक, कफ और वात को नष्ट करने वाला होता है। अतः पके फल का ही सेवन करना चाहिए। अच्छी तरह पका फल खाने में मधुर रुचिकारक, पित्तनाशक, भारी और स्वादिष्ट होता है।

ज्यों ही आम पकता जाता है इसके विटामिन कम होते जाते हैं। परन्तु पपीते में विटामिन बढ़ते ही जाते हैं। पके पपीते में 68 से 100 मिलीग्राम तक विटामिन सी रहता है। पके फल में उचित गुणों की अधिकता के कारण वह पेट के रोगियों के लिए काफी गुणकारी माना जाता है।

पपीते का रासायनिक विश्लेषण

इसकी प्रति आधी छटांक खाद्य सामग्री में जीवनदायक 14 कैलॉरियां प्राप्त हो सकती हैं। पपीते में पेप्सिन नामक पदार्थ की मौजूदगी के कारण यह पाचन शक्ति में वृद्धि कराने तथा मन्दाग्नि को दूर करने की क्षमता रखता है। सूर्य किरणों का भी इस फल पर अद्‌भुत प्रभाव परिलक्षित होता है। विटामिन ए और सी इसमें काफी होते हैं।

पपीते में पाए जाने वाले तत्व

जल	89.6 प्रतिशत	**प्रोटीन**	0.5 प्रतिशत
वसा	0.1 प्रतिशत	**खनिज पदार्थ**	0.4 प्रतिशत
कार्बोहाइड्रेट्स	9.5 प्रतिशत		

एक स्वास्थ्य विशेषज्ञ का कहना है कि "विटामिन ए के अभाव में शरीर में रोग के कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं जिनके कारण निमोनिया, तपेदिक, श्वास एवं दृष्टि रोग हो सकते हैं। विटामिन सी न मिलने पर स्कर्वी, रक्ताल्पता आदि का भय होता है। पपीता इन विटामिनों से युक्त होने के कारण उपर्युक्त रोगों से रक्षा कर, शरीर को कान्तिमय एवं शक्तिशाली बनाता है। इसमें लौह होने के कारण इससे रक्त की वृद्धि होती है, तथा फास्फोरस होने के कारण मस्तिष्क एवं वात संस्थान को शक्ति प्राप्त होती है। कैल्शियम होने से यह हड्डियों को मजबूत बनाता है। पपीते में कार्बोहाइड्रेट होने से शरीर की गर्मी बढ़ती है, और प्रोटीन मांस की वृद्धि करता है।"

पपीते का उपयोग

न केवल फल के रूप में बल्कि अन्य कई तरह से भी पपीते का हमारे घरों में प्रयोग किया जाता है। कच्चे फल से सूखी सब्जी, रसदार सब्जी तथा रायता एवं आचार बनाया जाता है। अन्य सब्जियों की तरह ही इसको सुखाकर बेमौसम में भी इसकी सब्जी का आनन्द लिया जा सकता है। पपीते की खीर तथा हलवा पौष्टिक और रुचिकारक भोज्य पदार्थ भी माने जाते हैं।

कच्चे फल के दूध को एकत्रित करके पापेन के रूप में सुरक्षित किया जाता है। पापेन ऊनी तथा सूती वस्त्रों को सिकुड़ने से भी बचाता है। कई महत्वपूर्ण औषधियों में भी इसे काम में लाया जाता है। आजकल पापेन की मांग अधिक है। विदेशी मुद्रा कमाने का यह महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है।

पके फल के गूदे को दूध–चीनी में घोल कर या नींबू के साथ इसका शरबत बनाकर गर्मी में पीने से काफी लाभदायक सिद्ध हुआ है। यह शरबत सस्ता तो पड़ेगा ही, काफी गुणकारी भी रहेगा। अच्छे पके फल के टुकड़े सेब, ककड़ी, संतरा के साथ नमक, काली मिर्च और नींबू या संतरे का रस मिलाकर आप स्वादिष्ट सलाद भी बना सकते हैं। इनके अतिरिक्त इसके जैम, जैली, तेल तथा

सिरके के साथ आचार भी बनाए जा सकते हैं।

पपीते के फल को नियमित रूप से प्रतिदिन खाली पेट खाते रहने से सौंदर्य में निखार आता है। इसका गूदा चेहरे पर प्रतिदिन रगड़ कर धो डालने से मुंहासे, झाइयां, आदि दूर होकर सुन्दरता निखरती है। इससे त्वचा पर सुकुमारता और कांति आती है। सौंदर्य वृद्धि का यह सस्ता उपाय है।

पपीते का औषधि रूप में प्रयोग

महत्वपूर्ण रोग निवारक तत्वों का भंडार होने के कारण कई रोगों में इसका उपयोग आप औषधि के रूप में भी कर सकते हैं। हमारे दैनिक जीवन में आने वाली सामान्य बीमारियों में पपीते के माध्यम से निम्न सरल उपचार संभव हैं। समय आने पर आप भी इनका प्रयोग करके सहज ही पपीते के गुणों से लाभ उठा सकते हैं।

- दाद, खुजली, तथा अन्य चर्म रोगों पर कच्चे पपीते का ताजा रस/दूध कुछ दिन लगातार लगाते रहने से उनसे मुक्ति पा सकते हैं। चर्म रोगों को जड़ से मिटाने में यह दूध काफी गुणकारी है।
- बच्चों के यकृत के बढ़ जाने पर पपीते का रस 5–7 बूंद चीनी के साथ मिलाकर दिन में तीन बार देते रहना चाहिए।
- रक्ताल्पता की वजह से अधिकांश स्त्रियों को दूध कम हो जाया करता है। ऐसे रोगियों को ताजे, अच्छे पके हुए पपीते लगातार दस–पन्द्रह दिन तक खिलाने चाहिए। इससे दूध बढ़ेगा और रक्त की कमी तथा अन्य उदर रोग भी नष्ट होंगे।
- यकृत रोगों, पीलिया, वात व्याधि में पपीते का रस 5 से 10 बूंद तक बताशे में रखकर खाना बहुत फायदेमंद रहता है।
- पेट में कीड़े पड़ जाने पर या निरंतर अजीर्ण की स्थिति बने रहने पर पपीते के बीजों का रस अथवा कच्चे पपीते का रस पेट के कीड़े नष्ट करने में बड़ा लाभकारी रहता है।
- बवासीर के मस्सों पर कच्चे, ताजे पपीते का रस लगातार कुछ दिन लगाने पर मस्से कट कर गिर जाते हैं, और रोगी चंगा हो जाता है।
- कच्चे पपीते की सब्जी तथा रायता खाने से अजीर्ण आंतों के रोग और उसके कृमि तुरन्त नष्ट होते हैं।
- मन्दाग्नि के रोगियों को पपीते के अधपके फल से दूध इकट्ठा करके औषधि के रूप में पानी में मिलाकर लगातार 10–15 दिन तक लेते रहना चाहिए। इससे खुलकर भूख लगने लगेगी।
- पेट के रोगियों, तिल्ली आदि में खाली पेट अच्छा पका हुआ ताजा पपीता खाना चाहिए। इससे आमाशय और आंतें साफ हो जाती हैं और संस्थान ठीक से काम करने लगता है।
- पपीते का हलवा तथा खीर वजन और बल बढ़ाने में एक चमत्कारिक औषधि का काम करते हैं। पपीते का फल पचने में हलका और काफी पौष्टिक होता है। जिन्हें कच्चा पपीता खाने में रुचिकर नहीं लगता वे जरा–सा सेंधा नमक, काली मिर्च छिड़क कर खाएं।
- सुखाया हुआ और नमकीन पपीता बढ़े हुए यकृत, तिल्ली तथा अन्य पेट के रोगों में फायदेमन्द है। इसका शर्बत गर्मीजन्य रोगों में अत्यधिक लाभदायक है।

पपीता ऐसा फल है, जिसे हम कई रूपों में काम में ला सकते हैं। इसे खाते रहने से हम बहुत से रोगों से बचे रहते हैं। कुछ स्थानों को छोड़कर आज भी पपीता एक सस्ता, सुलभ और लोकप्रिय फल है। इसके गुणों को देखते हुए हमें इसका अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।

• **(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।)**

उड़द एक उपयोग अनेक

डॉ. वीरेन्द्र कुमार

देश में उगाई जाने वाली दलहनी फसलों में उड़द का प्रमुख स्थान है। उड़द में प्रोटीन के अलावा कैल्शियम और फास्फोरस भी पाया जाता है जो मानव हड्डियों को सुदृढ़ करने और उनके संतुलित विकास में सहायक है। उड़द की दाल अपनी उत्कृष्ट पौष्टिकता के लिए संपूर्ण भारत में बहुत लोकप्रिय है। उड़द का पौष्टिक भूसा भी पशुओं को चारे के रूप में खिलाया जाता है। उड़द की फसल अपनी जड़ों द्वारा वायुमण्डल से नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करके खेतों को दोबारा उपजाऊ बनाने में भी सहायक है। परंपरागत रूप से किसान भाई उड़द की फसल को कम उपजाऊ जमीनों में बोते हैं जहां पर पानी का भी उचित प्रबंध नहीं होता है। उड़द की खेती भारत के उत्तरी व मध्यवर्ती क्षेत्रों में बहुतायत में की जाती है। दक्षिण भारत व छत्तीसगढ़ के मैदानी भागों में उड़द को रबी के मौसम में उगाया जाता है। उड़द के प्रमुख उत्पादक राज्यों में मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश व उत्तर प्रदेश हैं।

हमारे देश में दालों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता आज भी चिंताजनक है। वर्तमान में दालों का उत्पादन बढ़कर लगभग 15.40 मिलियन टन हो गया है। एशिया महाद्वीप में दाल भोजन का अतिआवश्यक अंग है। मानव स्वास्थ्य के लिए दाल प्रोटीन आपूर्ति का मुख्य अवयव है। उड़द में प्रोटीन के अलावा कैल्शियम और फास्फोरस भी पाया जाता है जो मानव हड्डियों को सुदृढ़ करने और उनके संतुलित विकास में सहायक है। शाकाहारियों के लिए दाल अति महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पाए जाने वाले अमीनो अम्ल लायसिन की मात्रा उच्चकोटि की प्रोटीन प्रदान करती है। भारत जैसे देश में दालें व अनाज प्रोटीन एक दूसरे के पूरक हैं। दालों में कम वसा व कार्बोहाइड्रेट प्रदान करने वाली दाल को बच्चों के भोजन हेतु उचित माना जाता है। उड़द की दाल अपनी उत्कृष्ट पौष्टिकता के लिए संपूर्ण भारत में बहुत लोकप्रिय है। उड़द की दाल का छिल्का दुधारू पशुओं की उत्पादकता बढ़ाने में भी सहायक होता है। अधिक नमी वाले क्षेत्रों में बीमारियों व कीड़ों के प्रकोप के कारण उड़द की अच्छी पैदावार नहीं मिलती है। कम अवधि वाली उड़द की किस्मों का विकास होने से इसे बसन्त व ग्रीष्म ऋतुओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। प्रस्तुत लेख में दी गई उन्नतशील प्रजातियों व सस्य तकनीकों को अपनाकर किसान भाई उड़द की फसल से अधिकतम पैदावार ले सकते हैं।

जलवायु – सामान्यतः उड़द को गर्म जलवायु की आवश्यकता होती है। इसे उष्ण कटिबंधीय जलवायु से लेकर उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु में आसानी से उगाया जा सकता है। उड़द की फसल को समुद्र तल से 1800 मीटर की ऊंचाई तक सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। वृद्धि अवस्था के दौरान अत्यधिक व बहुत कम तापमान का फसल की वृद्धि व विकास पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कई दिनों तक लगातार वर्षा या भारी वर्षा का भी उपज व वृद्धि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उड़द की भरपूर पैदावार हेतु चमकीली धूप अच्छी मानी जाती है क्योंकि चमकीली धूप में कलियों का निर्माण अधिक होता है। उत्तर भारत में उड़द की खेती मुख्यतः खरीफ ऋतु में की जाती है। परंतु इसकी खेती बसन्त ऋतु में भी आसानी से की जा सकती है। दक्षिण भारत में इसे रबी ऋतु में उगाते हैं। वर्षा ऋतु में अधिक नमी व बादलों वाले मौसम के कारण फसल पर रोगों व कीट पतंगों का प्रकोप अधिक होता है। उड़द की अधिकांश प्रजातियां प्रकाशकाल के प्रति संवेदी होती हैं अर्थात उनमें फूल आने के लिए एक निश्चित प्रकाश अवधि की जरूरत होती है।

उड़द के दानों का पोषण तत्वीय संघटन

घटक	पोषणमान (प्रतिशत में)
कार्बोहाइड्रेट	56.6
प्रोटीन	26.2
वसा	1.2
पानी	12.3
कैलोरिफिक मान (कैलोरी/100 ग्राम)	350.0
कैल्शियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	185.0
आयरन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	8.7
फास्फोरस (मिलीग्राम/100 ग्राम)	345.0
लायसिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	6.5
आइसोल्युसिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	5.8
मेथीयोनिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	1.1
विटामिन बी$_1$ (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.42
विटामिन बी$_2$ (मिलीग्राम/100 ग्राम)	0.37

मृदा का चुनाव – सामान्यतः उड़द की खेती सभी प्रकार की भूमियों में की जा सकती है। परंतु अच्छे जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट भूमि उड़द की खेती के लिए उपयुक्त मानी जाती है। भारी व काली मिट्टियों में जल निकास की व्यवस्था बहुत जरूरी है। उड़द की कुछ विशेष किस्मों को लवणीय व क्षारीय भूमियों में भी उगाया जा सकता है।

खेत की तैयारी – अच्छे अंकुरण व भरपूर पैदावार हेतु खेत को सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल से जोतना चाहिए। तत्पश्चात दो–तीन बार कल्टीवेटर से जुताई करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाएं जिससे मृदा नमी संरक्षित रहने के साथ–साथ भुरभुरी हो जाए। शुष्क व अर्धशुष्क क्षेत्रों में गहरी जुताई करने से पौधों की जड़ें अधिक गहराई तक जाती हैं जिससे कम वर्षा की दशा या समय पर सिंचाई न होने की स्थिति में पौधों की जड़ें निचली सतहों से भी पोषक तत्वों तथा पानी का अवशोषण कर सकती हैं। सिंचित क्षेत्रों में कम जुताई करके भी इसकी बुवाई की जा सकती है।

फसल चक्र – खरीफ ऋतु में उड़द की फसल मुख्यतः मिश्रित व शुद्ध फसल के रूप में बोई जाती है। इसको अधिकतर मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, कपास व तिल इत्यादि के साथ मिलाकर बोते हैं। उत्तर भारत में ग्रीष्म व बसंतकालीन उड़द को सरसों, चना, आलू व गन्ना की कटाई के बाद भी बोते हैं। जहां तक हो

सके इसे अन्न वाली फसलों के बाद उगाएं ताकि उड़द की फसल को विभिन्न रोगों व कीटों से बचाया जा सके।

बुवाई का समय – उत्तरी एवं मध्य भारत में उड़द की बुवाई खरीफ एवं ग्रीष्म/बसंत ऋतु में की जाती है। खरीफ की फसल को जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के मध्य तक बोना चाहिए। बसंतकालीन फसल को मध्य फरवरी से मध्य मार्च के बीच बोना उपयुक्त रहता है। दक्षिण व पूर्वी भारत में इसे रबी के मौसम में उगाया जाता है। उड़द की पछेती किस्में खरीफ के मौसम के लिए उपयुक्त मानी जाती हैं। जबकि शीघ्र पकने वाली प्रजातियों को जायद में बोना चाहिए। विभिन्न अनुसंधान केंद्रों पर किए गए परीक्षणों में पाया गया है कि जुलाई के पहले पखवाड़े में बोई गई फसल से अधिकतम उपज मिलती है। बसंतकालीन उड़द की बुवाई का उचित समय मार्च का पहला पखवाड़ा है। इससे पहले या बाद में बुवाई करने पर फसल की वृद्धि व उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

उन्नतशील प्रजातियां – देश के विभिन्न अनुसंधान केंद्रों द्वारा उड़द की रोग प्रतिरोधी, अधिक प्रोटीन की मात्रा वाली, कम फसल अवधि वाली व भरपूर पैदावार देने वाली प्रजातियां विकसित की गई हैं। इनमें से कुछ प्रमुख किस्मों का विवरण तालिका–2 में दिया गया है।

इसके अलावा उड़द की डब्ल्यू.बी.यू.–109, के.यू.–300, के.यू–301, टी.यू.–94–2, बिरसा उड़द–1, टी.पी.यू.–4, आर.बी.यू.–38, ए.के.यू.–4, एल.बी.जी.–402, के.यू.–96–3, डब्ल्यू.बी.जी.–26, एन.डी.यू.–1 व वम्बन–2 प्रजातियां विकसित की गई हैं।

उड़द की उन्नतशील व नवीनतम किस्में

प्रजातियां	पकने की अवधि (दिनों में)	औसत उपज (क्वि./हे.)	विशेष
टाईप–27	130–135	12–16	पश्चिमी उत्तर प्रदेश के लिए विशेष रूप से उपयुक्त पाई गई। दिल्ली, हरियाणा, बिहार व मध्य प्रदेश के लिए भी उपयोगी। पीला मोजेक का हल्का प्रकोप होता है।
टाईप–65	130–135	12–14	उत्तर प्रदेश के लिए पछेती किस्म। पीला मोजेक व जीवाणुजज अंमारी का हल्का प्रकोप।
टाईप–9	85–90	10–12	उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र, यह अगेती किस्म है। रोगों के प्रति ग्रहणशील है।
पन्त यू–19	80–85	10–12	पूर्वी उत्तर भारत के लिए उपयुक्त, पीला मोजेक के प्रतिरोधी है।
पन्त यू–35	70–75	10–12	यह प्रजाति पीला मोजेक के लिए सहिष्णु है। जायद व खरीफ में देर से बुवाई हेतु उपयुक्त।
नरेन्द्र उर्द–1	70–80	12–15	सम्पूर्ण उत्तर भारत के लिए उपयोगी, खरीफ में बुवाई के लिए उपयुक्त।
पन्त यू–31	70–75	12–18	यह किस्म पीला मोजेक रोग के लिए प्रतिरोधी है। खरीफ व जायद दोनों मौसमों में उगाया जा सकता है। संपूर्ण उत्तर प्रदेश के लिए उपयुक्त।
शेखर–2	80–85	12–15	संपूर्ण उत्तर प्रदेश के लिए उपयोगी।
आजाद–1	80–90	10–12	उत्तरी भारत के लिए उपयोगी।
आजाद उर्द–2	75–80	12–13	संपूर्ण उत्तर भारत के लिए, पौधे सीधे एवं गहरे हरे पत्तियों वाले, दानों का रंग हरा होता है।
शेखर–1	80–85	12–15	उत्तर भारत के लिए उपयोगी, यह हरे दानों वाली किस्म है।
डब्ल्यू.बी.यू.–108	80–85	12–14	पंजाब, हरियाणा व उत्तर प्रदेश के लिए उपयोगी।
आजाद उर्द–3	80–85	12–14	यह प्रजाति वर्ष 2002 में कानपुर से विकसित की गई। उत्तर भारत के लिए उपयोगी।
शेखर–3	75–80	12–14	उत्तर प्रदेश के लिए उपयोगी।
पी.डी.यू.–1	85–90	10–12	यह उत्तर प्रदेश, पंजाब व हरियाणा के लिए उपयोगी।
पन्त यू–30	70–75	10–15	यह किस्म पीला मोजेक व चूर्णिल आसिता रोग के लिए प्रतिरोधी, मध्य एवं दक्षिण भारत के लिए उपयुक्त, खरीफ व जायद दोनों मौसमों में उगाई जा सकती है।
उत्तरा	75–80	12–15	उत्तर भारत के लिए उपयुक्त।
माश–48	90–100	12–15	यह किस्म पंजाब से विकसित हुई है। दाना काला, चमकीला व बड़े आकार का, यह किस्म सूखा–सहिष्णु है।
माश–1–1	90–95	12–18	दाने आसानी से पक जाते हैं। इसको जायद व खरीफ दोनों ऋतुओं में उगाया जा सकता है।

बीज की मात्रा एवं बुवाई की विधि – प्रायः किसान भाई अपने पास रखे बीज को ही नई फसल की बुवाई हेतु उपयोग करते हैं। ऐसे बीज की स्वस्थता व शुद्धता अच्छी नहीं होती है। यह जमाव से लेकर फली बनने तक विभिन्न प्रकार की बीमारियों व कीटों से ग्रसित होते रहते हैं जिसके कारण उपज में कमी आ जाती है। अतः बुवाई हेतु बीज का चुनाव हर बार प्रमाणित व विश्वसनीय संस्था से करें। ग्रीष्मकालीन व बसंतकालीन उड़द की सामान्य किस्मों का 15–20 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है जबकि खरीफ ऋतु में बोई गई फसल के लिए 12–15 कि.ग्रा. बीज प्रति हेक्टेयर आवश्यक होता है। बुवाई हमेशा कतारों में हल के पीछे या सीडड्रिल द्वारा करनी चाहिए। बुवाई हेतु छिटकवां विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इस विधि से बुवाई करने पर फसल में निराई–गुड़ाई करने में कठिनाई होती है। साथ ही बीजों का जमाव कम होता है। ग्रीष्मकालीन उड़द के लिए लाईन से लाईन की दूरी 20 से 25 सें.मी. तथा पौधे से पौधे के दूरी 8–10 सें.मी. रखनी चाहिए। जबकि खरीफ ऋतु में पौधों की अधिक वृद्धि होने के कारण पंक्ति से पंक्ति के बीच की दूरी 30 से 45 से.मी. तथा पौधे की दूरी 10 सें.मी. रखनी चाहिए।

बीज उपचार – बीज को 1.0 ग्राम कार्बेण्डाजिम अथवा 2.5 ग्राम फफूंदीनाशक दवा थाइरम से प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से अवश्य उपचारित करें। इसके बाद बीज को राइजोबियम जीवाणु से उपचारित करना अति आवश्यक है। इससे फसल द्वारा वायुमंडलीय नाइट्रोजन के यौगिकीकरण प्रक्रिया पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। बीज उपचार बुवाई के 10–12 घंटे पहले कर लेना चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र में बुवाई हेतु राइजोबियम जीवाणु के दो पैकेट पर्याप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त उड़द की खेती में लागत कम करने के लिए बीजों को फास्फेट सोलूबिलाइजिंग बैक्टिरिया (पी. एस.बी.) से भी उपचारित करना चाहिए। इससे मृदा में उपस्थित उपलब्ध फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने में मदद मिलती है। ये

पैकेट सभी कृषि विश्वविद्यालयों व अनुसंधान संस्थानों में सूक्ष्मजीव विज्ञान संभाग से मुफ्त प्राप्त किए जा सकते हैं।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन – दलहनी फसल होने के कारण उड़द की फसल में खाद एवं उर्वरकों की कम आवश्यकता पड़ती है। जहां तक हो सके उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना चाहिए। उड़द की फसल के लिए नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश क्रमशः 20:50:40 कि.ग्रा./हेक्टेयर के हिसाब से प्रयोग करना चाहिए। नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की संपूर्ण मात्रा बुवाई के समय पंक्ति की बगल में 5–6 से.मी. की गहराई पर देनी चाहिए। आखिरी जुताई करने से पहले खेत में समान रूप से छिटककर मिट्टी में भलीभांति मिला देना चाहिए। जिन क्षेत्रों में सल्फर की कमी है, वहां पर 20 कि.ग्रा. सल्फर प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें। इसके अलावा जिन क्षेत्रों में सूक्ष्म पोषक तत्वों जैसे लोहा, जस्ता व बोरोन आदि की कमी पाई जाती है वहां पर मृदा परीक्षण के आधार पर ही इन पोषक तत्वों का प्रयोग करें। किसान भाई याद रखें कि यदि वे गोबर की खाद, कम्पोस्ट या जैविक उर्वरकों का प्रयोग कर रहे हैं तो उर्वरकों की संस्तुत मात्रा में से 20 से 25 प्रतिशत कम कर दें। इससे उड़द की फसल में लागत कम करने में मदद मिलेगी।

सिंचाई प्रबंधन – ग्रीष्म व बसन्तकालीन फसल सिंचित क्षेत्रों में ही उगाई जाती है। जहां पर मौसम के अनुसार उड़द की फसल में 10–15 दिनों के अंतराल पर 4–6 सिंचाईयों की आवश्यकता पड़ती है। पहली सिंचाई बुवाई के 20 से 25 दिनों बाद करनी चाहिए। खरीफ ऋतु में उगाई जाने वाली फसल को सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है। खरीफ ऋतु की फसल मानसून पर निर्भर करती है। इस मौसम में यदि लंबी अवधि तक वर्षा न हो तो बीच में एक सिंचाई फलियां बनने के अवस्था पर करनी चाहिए। अधिक वर्षा या निचले क्षेत्रों में वर्षा के पानी को इकट्ठा न होने दें अन्यथा फसल के मरने का अंदेशा रहता है। अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बुवाई मेड़ों पर करनी चाहिए जिससे मेड़ों के बीच बनी नालियां जल–निकास का काम कर सकें।

विरलीकरण – उड़द की फसल में पौधों का विरलीकरण अतिआवश्यक है। उड़द की अधिक उपज प्राप्त करने के लिए प्रति इकाई क्षेत्र पौधों की वांछित संख्या बनाए रखना बहुत जरूरी है। बुवाई के 18–20 दिनों बाद घने पौधों को निकाल कर पौधों की दूरी 10 सें.मी. कर देनी चाहिए। उत्तर भारत में उड़द की अधिकतम पैदावार के लिए 2.5 से 3.0 लाख पौधे प्रति हेक्टेयर आवश्यक है। खरीफ में उगाई गई फसल में पौधों की संख्या बसंतकालीन फसल की तुलना में कम होती है क्योंकि खरीफ ऋतु में पौधों की अधिक वृद्धि होती है।

खरपतवार नियंत्रण – उड़द की फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए बुवाई के 20–25 दिन बाद निराई–गुड़ाई करना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी निराई–गुड़ाई आवश्यकतानुसार बुवाई के 40–45 दिन बाद करनी चाहिए। प्रायः फसल की वृद्धि के साथ ही कई प्रकार के चौड़े व संकरी पत्ती वाले खरपतवार उगने लगते हैं जिनमें सांवा, बांद्रा, दूब, मोथा, हिरनखुरी, जंगली चौलाई, हजारदाना आदि प्रमुख हैं। ये फसल की वृद्धि और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जिससे किसान को अपनी फसल का अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता है। आजकल घास व चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नष्ट करने के लिए बहुत से शाकनाशी बाजार में उपलब्ध हैं। इसके लिए बुवाई के बाद परंतु अंकुरण से पूर्व पेंडीमिथेलिन नामक शाकनाशी की 750 ग्राम सक्रिय तत्व को प्रति हेक्टेयर की दर से 500–600 लीटर पानी में छिड़काव करने पर सभी प्रकार के खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है या फ्लूक्लोरालिन (45 ई.सी.) नामक शाकनाशी की 2.5 लीटर मात्रा को 600–700 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के पहले प्रति हेक्टेयर की दर से भूमि पर छिड़काव करके मिट्टी में अच्छी तरह मिला दें या एलाक्लोर (लासो) की 4 लीटर मात्रा को 700–800 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के बाद परंतु अंकुरण से पूर्व छिड़काव करें।

कीट एवं उनका नियंत्रण – उड़द की फसल में लगने वाले कीटों में बिहार हेयरी केटरपिलर, फली छेदक, सींगदार केटरपिलर, हरा तेला व सफेद मक्खी प्रमुख हैं। बिहार हेयरी केटरपिलर के लारवा व वयस्क कीट फसल को हानि पहुंचाते हैं। कीट फसल की पत्तियों और कोमल भागों को खा जाते हैं। इसकी रोकथाम हेतु 0.5 प्रतिशत एंडोसल्फान (थायड़ान) का छिड़काव करना चाहिए। फसल पर कीटों की प्रारंभिक अवस्था में ही छिड़काव करना चाहिए। फली छेदक की रोकथाम के लिए एण्डोसल्फान 1 लीटर या कार्बारिल 50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी. 1 कि.ग्रा./हे. का छिड़काव करें। इसके लिए 1000 लीटर पानी प्रति हेक्टेयर पर्याप्त होता है। सींगदार केटरपिलर भी फसल को बहुत अधिक नुकसान पहुंचाती है। पूर्ण वयस्क कीट 3–4 इंच लंबा, गहरे भूरे रंग का तिरछे बालों वाला होता है। इसके

अगल–बगल में लाल–भूरे धब्बे होते हैं। इसकी पूंछ की तरफ मुड़े हुए सींग से होते हैं। इसके प्रकोप से पौधे पत्तियों रहित हो जाते हैं। इसके नियंत्रण हेतु मैलाथियान (50 ई.सी.) की 2.5 लीटर को 600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें। सफेद मक्खी की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफोस की 3.0 लीटर मात्रा को 600 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। प्रभावी नियंत्रण के लिए उपर्युक्त दवाओं का 15 दिन के अंतराल पर दो–तीन बार छिड़काव करें।

रोग एवं उनका नियंत्रण – उड़द की फसल में लगने वाले प्रमुख रोगों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है।

सर्कोस्पोरा पर्ण रोग – यह एक कवकजनित रोग है जो सर्कोस्पोरा कैनेसेन्स नामक कवक से लगता है। यह रोग उड़द उगाने वाले सभीं प्रांतों मुख्य रूप से असम, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में व्यापक रूप से फैलता है। रोगग्रस्त पौधों की पत्तियों पर भूरे रंग की अर्धवृताकार से अनियमित 2–6 मि.मी. व्यास की चित्तियां पत्तियों पर अधिक तथा फलियों पर कम बनती हैं। रोग का अधिक प्रकोप होने पर पत्तियां झुलस जाती हैं। इस रोग की रोकथाम के लिए रोग प्रतिरोधी उन्नतशील किस्मों जैसे पन्त उड़द–31, सरला, उत्तरा, आजाद उड़द–1, नरेन्द्र उड़द–1, विरसा उड़द–1, टी.यू.–94–2, के.यू.–96–3, के.यू.–300, ए.के.यू.–4, टी.पी.यू.–4, डब्ल्यू.बी.यू.–108 और डब्ल्यू.बी.यू.–109 को अपने क्षेत्र के अनुसार लगाएं। रोग से बचने के लिए उत्तर भारत में उड़द की बुवाई 15 जुलाई के आसपास ही करे। इसके अलावा फफूंदीनाशी कार्बन्डाजिम (बाविस्टीन) से बीज उपचारित करके बोए।

काली फफूंद – यह रोग सुडोसर्कोस्पोरा कुएंटा नामक कवक द्वारा फैलता है। इसमें पत्तियों की ऊपरी सतह पर बैंगनी–लाल रंग की चित्तियां बनती हैं जिनका मध्य भाग भूरे रंग का होता है। ये चित्तियां पुरानी फलियों पर ज्यादा पाई जाती है। अधिक धब्बों के कारण फलियों का रंग काला हो जाता है। रोग की उग्र अवस्था में बीज भी संक्रमित हो जाता है। संक्रमित बीज सिकुड़ कर काला पड़ जाता है। रोग से फसल का बचाव सर्कोस्पोरा की भांति करें।

पीला मोजेक रोग – उड़द की फसल में यह सबसे अधिक लगता है जो पीला मोजेक वाइरस से लगता है। इस रोग का

फैलाव सफेद मक्खी द्वारा होता है। रोग के प्रथम लक्षण बुवाई के 15–20 दिनों बाद पौधों की पत्तियों पर पीले गोलाकार दाने के रूप में दिखाई पड़ते हैं। ये धब्बे एक साथ मिलकर तेजी से फैलते हैं। जो बाद में पत्तियों को बिल्कुल पीला कर देते हैं। ये पत्तियां धीरे–धीरे ऊतकक्षयी होकर सूख जाती हैं। ऐसे पीले पौधे खेत में एकदम स्पष्ट नजर आते हैं जिन्हें दूर से ही देखा जा सकता है। रोगग्रस्त पौधों में बहुत कम व छोटी फलियां बनती हैं। रोगग्रस्त फलियों का बीज सिकुड़ा हुआ तथा मोटा व छोटा होता है। इसकी रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्में उगानी चाहिए। उत्तरी भारत में उड़द की बुवाई 15 जुलाई के आसपास करें। रोगी पौधों और खरपतवारों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए। यह रोग के प्रभाव को कम करने का सबसे सरल व सुगम उपाय है। जैसे ही खेत में पीला मोजेक संक्रमित पौधा नजर आए उन्हें तुरंत उखाड़कर मिट्टी में दबा दें या जला दें। यह कार्य नियमित रूप से करें। इसके अलावा मैटासिस्टाक्स (0.1 प्रतिशत) को बुवाई के 25 दिनों बाद छिड़काव करना चाहिए। दो–तीन छिड़काव 10 दिन के अंतराल पर करने चाहिए।

मृदुरोमिल आसिता – इस रोग में पत्तियों व शाखाओं पर सफेद चूर्ण की तरह कवक की वृद्धि हो जाती है। बाद में पत्तियां गिर जाती हैं। इसकी रोकथाम हेतु 6–7 कि.ग्रा. घुलनशील गंधक या 250 मि.ली. डयनोकेप (48 ई.सी.) का घोल पानी में मिलाकर रोगग्रस्त पौधों पर करें। यह छिड़काव दो–तीन बार 10 दिनों के अंतराल पर करें।

जड़ विगलन (चारकोल रोट) – यह एक कवकजनित रोग है जो मैक्रोफोमिना फैजियोलाई नामक कवक से फैलता है। इसमें पौधे की पत्तियां पीली पड़कर सूखने लगती हैं। रोगग्रस्त पौधों के तने व जड़ें भी गल जाती हैं। रोग की रोकथाम के लिए बीज को बुवाई से पूर्व 2.5 ग्राम केप्टान या 2 ग्राम कार्बेन्डाजिम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें।

कटाई–मड़ाई – खरीफ ऋतु की फसल में जब अधिकांश फलियां पक जाएं तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए। बसंत व ग्रीष्मकालीन फसल में जब 70–80 प्रतिशत फलियां पक जाएं तो फसल काट लेनी चाहिए। देर से कटाई करने पर फलियों के चटखने का अंदेशा रहता है जिससे फसल की भरपूर पैदावार नहीं मिल पाती है। सामान्यतः उड़द की फलियां एक साथ पक जाती हैं। कटाई उपरांत फसल को 5–6 दिन तक खलिहान में सूखने के लिए खुला छोड़ देना चाहिए। सूखी हुई फसल की मड़ाई थ्रैशर की सहायता से करते हैं।

उपज व भंडारण – अच्छे फसल प्रबंधन के अंतर्गत खरीफ ऋतु में बोई गई उड़द की शुद्ध फसल से 12–15 क्विंटल प्रति हेक्टेयर उपज मिल जाती है। बसंत व ग्रीष्मकालीन फसल से 15–18 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक उपज प्राप्त हो जाती है। जबकि मिश्रित (मिलवा) फसल से शुद्ध फसल की अपेक्षा कम उपज मिलती है। इसके अलावा उड़द की फसल से 25–30 क्विंटल सूखा भूसा भी प्रति हेक्टेयर प्राप्त हो जाता है। बीज का भंडारण अच्छी तरह से सूखा ही करना चाहिए। अन्यथा बीजों में कीड़े लगने का भय रहता है। भंडारण के समय बीज में 8–10 प्रतिशत नमी होनी चाहिए।

(लेखक राष्ट्रीय तिलहन एवं वनस्पति तेल विकास बोर्ड, गुड़गांव में सहायक निदेशक हैं।)

ई–मेल : v.kumarnovod@yahoo.co

पाठकों / लेखकों से अनुरोध

आप "कुरुक्षेत्र" पत्रिका के नियमित पाठक/लेखक हैं तो आप जरूर चाहेंगे कि आपके गांव या उसके आसपास आ रहे बदलाव के बारे में सभी लोगों को पता चले। आपके गांव या आसपास जरूर ऐसी कोई महिला/पुरुष या स्वयंसेवी संस्था होगी जिसके बूते पर बदलाव की ब्यार चली हो। सरकारी प्रयासों के चलते भी आपके गांव का कुछ कायापलट तो हुआ ही होगा।

अगर आपके पास ऐसी कोई भी जानकारी है तो आप उसे अपने शब्दों में लिखकर (फोटो सहित) भेजें। लेख छपने पर उसका उचित पारिश्रमिक भी दिया जाएगा। हमारा पता है – वरिष्ठ संपादक, कुरूक्षेत्र (हिंदी), कमरा नं. 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली–110001, आप हमें लेख ई–मेल भी कर सकते हैं।

ई–मेल : kuru.hindi@gmail.com

दिल्ली सरकार
दिल्ली टीम – स्वप्न करें साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

आओ मनाएं भारत पर्व

26 जनवरी 2010, भारतीय गणतंत्र के 60 गौरवपूर्ण वर्ष.

DIP/1720/09-10

KH-3/10/5

छाई खेतों में हरियाली - आई गांवों में खुशहाली

हरि विश्नोई

ड्रिप इरीगेशन पद्धति अत्यंत लाभकारी है। इस तरीके से प्रेशर द्वारा पौधों की जड़ों के पास पानी पहुंचा कर डिपर द्वारा उसे बूंद-बूंद करके टपकाया जाता है। इसके लिए खेत में रबर के पाइप बिछाए जाते हैं। ये पाइप एक बार बिछाने के बाद कम से कम 10 साल तक काम करते रहते हैं। महाराष्ट्र, केरल व अन्य कई राज्यों के किसानों ने इसे अपनाया है।

मेरठ के किसान सिंचाई की बूंद–बूंद सिंचाई प्रणाली को बढ़ावा देकर न केवल पानी की बचत कर रहे हैं, प्रकृति का भी भला कर रहे हैं। पानी के गहराते संकट को देखकर जल पुरुष श्री राजेन्द्र सिंह के क्षेत्र के किसान पानी बचाने की दिशा में सक्रिय हो गए हैं। मानपुर ग्राम के प्रधान श्री कृष्णपाल सिंह ने खुद आगे बढ़कर अपने क्षेत्र की समस्या को जांचा, परखा, देखा और खुद उसका समाधान खोजा। उन्होंने दूसरों की भांति व्यवस्था को नहीं कोसा। वरन् जल संरक्षण की महत्ता को समझा और इस दिशा में पहल करके अपने खेत में ड्रिप इरीगेशन प्लांट लगवाया। इतना ही नहीं दूसरों को भी इस नई तकनीक व उपयोगी प्रणाली के संबंध में बताया।

ग्राम प्रधान के उत्साह से प्रेरित होकर पड़ोस के गांवों में तीन और कृषक झट से इस प्रणाली को अपनाने के लिए राजी हो गए और अब क्षेत्र के 13 किसान इस कतार व इंतजार में हैं कि उन्हें यह अवसर कब मिलेगा? दरअसल इस जिले में चीनी की 6 बड़ी मिले हैं। अतः यहां गन्ने की खेती बहुत बड़े पैमाने पर की जाती है। गन्ने की फसल को भरपूर पानी की जरूरत पड़ती है। इस लिहाज से मानपुर के इलाके में किसान बहुत परेशान थे, क्योंकि वहां की जमीन रेतीली है। अतः खेतों में खड़े गन्ने नहीं किसानों के प्राण सूख रहे थे। जमीन के अंदर का पानी बढ़ाना तो वश की बात नहीं है, लेकिन पानी को बरबाद होने से बचाया जा सकता है। इसके लिए नई तकनीक को अपनाना

जरूरी है ताकि पौधों की जड़ों को जरूरत के मुताबिक पानी मिले।

उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले में भूजल स्तर लगातार नीचे जा रहा है। ट्यूबवैलों की तलहटी सूख रही है। जिले के कई हिस्से पानी की दृष्टि से डार्क ब्लॉक घोषित किए जा चुके हैं। ऐसे में पानी की हर बूंद कीमती है। अतः पानी का अपव्यय रोकना हमारा कर्तव्य बन गया है। कहते हैं कि जल संरक्षण ही जल संवर्धन है। यह तथ्य सर्वविदित है कि कृषि क्षेत्र में सिंचाई के लिए पानी की विपुल आवश्यकता पड़ती है। पानी की अधिकता से जमीन में खारापन बढ़ रहा है। विशेषज्ञों का मानना है कि फव्वारा विधि और बूंद–बूंद सिंचाई पद्धति जैसे किफायती उपाय आज की जरूरत हैं।

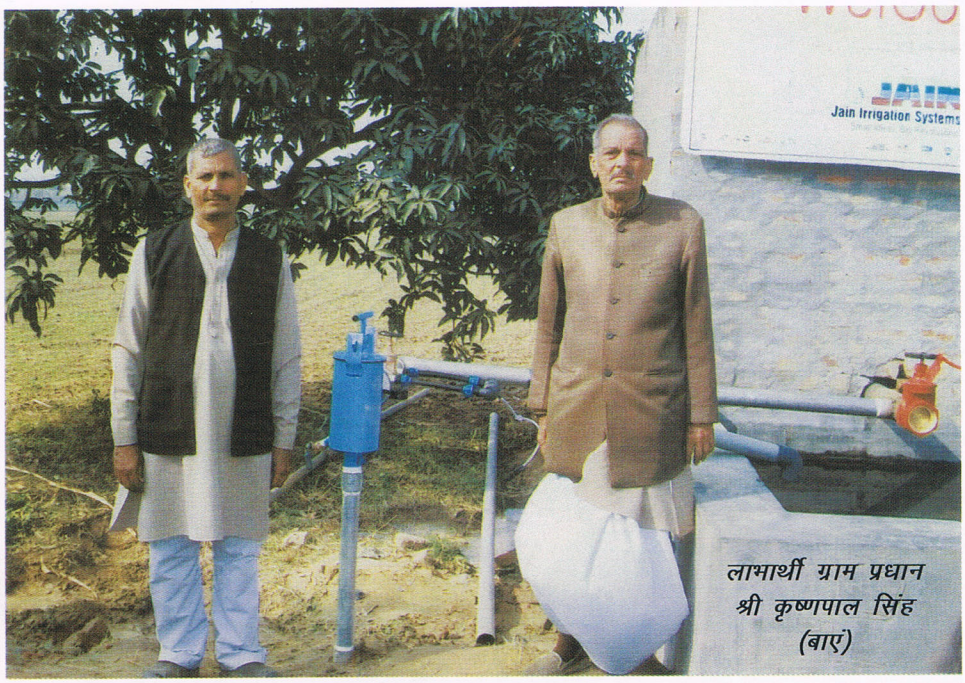

लाभार्थी ग्राम प्रधान श्री कृष्णपाल सिंह (बाएं)

हमारे देश में ज्यादातर किसान आज भी परंपरावादी हैं। वे हर नए काम से शंकित व आशंकित रहते हैं। उन्हें लीक छोड़ने में संशय रहता है। बेशक ड्रिप इरीगेशन तकनीक फायदेमंद है लेकिन मेरठ में किसान तैयार न थे, क्योंकि इसमें 75 हजार रुपये अपनी जेब से खर्च करने पड़ते। दरअसल ड्रिप संयंत्र लगवाने में करीब एक लाख रुपये का खर्च आता है। इसमें 25 हजार रुपये का अनुदान लाभार्थी को सरकार की ओर से मिलता है तथा शेष राशि लाभार्थी को स्वयं वहन करनी पड़ती है। अतः इतना जोखिम लेने को कोई तैयार नहीं हो रहा था।

प्रेरणा और प्रोत्साहन

कृषि एवं उद्यान आदि कई विभागों ने पिछले 2 वर्षों में काफी प्रयास किया कि किसानों को ड्रिप इरीगेशन अपनाने के प्रति प्रेरित किया जाए लेकिन किसान टस से मस न हुए। इस दिशा में सर्वप्रथम सफलता गन्ना विकास विभाग को मिली। गन्ना किसानों को प्रोत्साहित व जागरूक करने में मेरठ के ऊर्जावान जिला गन्ना अधिकारी डा.आर.बी. राम व निष्ठावान उप गन्ना आयुक्त सत्येन्द्र सिंह ने रात–दिन एक करके बहुत सराहनीय काम किया। उनके कुशल मार्गदर्शन व निर्देशन में उनके स्टाफ ने प्रभावी प्रयास किए। इस बारे में चेतना एवं जागृति लाने के उद्देश्य से ग्रामीण इलाकों में गोष्ठियां की गई ताकि किसानों को सिंचाई की इस नई तकनीक के लाभों की जानकारी विस्तार से दी जा सके। साथ ही इस काम में पहल के लिए जनप्रतिनिधियों को चुना गया तथा अनुदान में बढ़ोतरी व भागीदारी हेतु चीनी मिलों को प्रेरित किया गया। अतः परिणाम सफल एवं उत्साहवर्धक रहे। इसके फलस्वरूप जिले की नगलामल चीनी मिल सरकारी अनुदान के समान धनराशि 25 हजार रुपये अनुदान के तौर पर देने को तैयार हो गई। अतः जागरूक किसानों ने इस पद्धति को अपनाने में अपनी रुचि दिखाई है।

मानपुर के बाद ग्राम माछरा के किसान सुरेश त्यागी तथा ग्राम मउखास के किसान राजेश शर्मा के खेतों पर भी ड्रिप इरीगेशन के प्लांट लगवाए जा रहे हैं। इतना ही नहीं अनुदान राशि 50 प्रतिशत से अधिक कराने के प्रयास भी किए जा रहे हैं ताकि अधिकाधिक व आम किसान भी इस प्रणाली को अपना कर खेती में पानी का अपव्यय रोक सकें। वस्तुतः हमारे देश में रोटी से अधिक सूचना की गरीबी है। किसान को खाद, बीज, दवा और यंत्र आदि कृषि निवेश तो सहकारी समितियों व बाजार आदि से सहज सुलभ हो जाते हैं लेकिन नई, सही व पूरी जानकारी तो ढूंढनी पड़ती है।

सूचना क्रांति के इस युग में दुनिया भर की जानकारी इंटरनेट आदि पर उपलब्ध है, लेकिन अधिकतर किसान उसे हासिल करने में सक्षम व समर्थ नहीं है। अतः सामूहिक सभाओं, प्रचार गोष्ठियों एवं प्रदर्शनी आदि के द्वारा सिंचाई प्रबंधन व ड्रिप इरीगेशन आदि के बारे में किसानों की शंकाओं व जिज्ञासाओं का

खेत में बिछी पाइपलाइन की बदौलत गेहूं के साथ गन्ने की लहलहाती फसल

समाधान किया गया। पानी की बचत का पाठ सीखने के बाद से अब मानपुर गांव की स्थिति पहले से बहुत बेहतर है। कहते हैं कि एक अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता, लेकिन यह भी सच है कि एक अकेला दीपक अपने आसपास का अंधेरा दूर कर सकता है। दूसरों को राह दिखा सकता है। साथ ही दूसरों के दिल में एक नई ज्योति जला सकता है। यही मानपुर में भी हुआ। वहां के प्रगतिशील ग्राम प्रधान की पहल के कारण पूरे क्षेत्र की कायापलट हो गई। उनकी सफलता दूसरों के लिए प्रेरणादायक सिद्ध हो सकती है।

ड्रिप इंरीगेशन प्रणाली की विशेषताएं

ड्रिप इरीगेशन पद्धति अत्यंत लाभकारी है। इस तरीके से प्रेशर द्वारा पौधों की जड़ों के पास पानी पहुंचा कर डिपर द्वारा उसे बूंद–बूंद करके टपकाया जाता है। इसके लिए खेत में रबर के पाइप बिछाए जाते हैं। ये पाइप एक बार बिछाने के बाद कम से कम 10 साल तक काम करते रहते हैं। महाराष्ट्र, केरल व अन्य कई राज्यों के किसानों ने इसे अपनाया है। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी जिले में भी किसानों ने इस प्रणाली को अपना कर लाभ उठाया है। अब मेरठ जिले में भी किसानों ने ड्रिप इरीगेशन की पद्धति को अपना लिया है। ड्रिप इरीगेशन की पद्धति जल संरक्षण के लिए बहुत उपयुक्त है। इससे बूंद–बूंद करके पानी पौधों की जड़ों में जाने से बरबाद नहीं होता। एक हेक्टेयर के खेत की सिंचाई में औसतन 16 घंटे ट्यूबवेल चलाना पड़ता है, किंतु इस नई प्रणाली से वह काम केवल 4 घंटे में पूरा हो जाता है। अतः श्रम, ऊर्जा व पानी की भारी बचत होती है। इससे खरपतवार कम होते हैं तथा साथ में तरल उर्वरक भी दिए जा सकते हैं। खास बात यह कि फसल अच्छी होती है तथा मिट्टी की संरचना भी खराब नहीं होती।

सामान्यतः गन्ने की खेती में तो यह बहुत फायदेमंद है। उत्तर प्रदेश की जलवायु को देखते हुए गन्ना कृषि में 6 से 8 सिंचाई करने की जरूरत पड़ती है। यदि वर्षा कम हो तो 20 दिनों के अंतर से हल्की सिंचाई करने की संस्तुति की जाती है। अधिक गहरी सिंचाई करने से पानी ज्यादा खर्च होता है, रिसकर गन्ने की जड़ों से काफी नीचे पहुंच जाता है तथा जड़ों को सांस लेने में दिक्कत होती है। अतः इसके कारण फसल को पूरा लाभ नहीं मिल पाता है। इस दृष्टि से गन्ने की फसल में 3 से साढ़े 3 इंच की हल्की सिंचाई बूंद–बूंद प्रणाली से करना लाभकारी सिद्ध हुआ है।

(लेखक उप गन्ना आयुक्त कार्यालय मेरठ में क्षेत्रीय प्रचार अधिकारी हैं)

हमारे आगामी अंक

अप्रैल, 2010 – बजट 2010–11
मई, 2010 – बिन पानी सब सून
जून, 2010 – ग्रामीण महिला सशक्तिकरण
जुलाई, 2010 – खेती का बदलता स्वरूप
अगस्त, 2010 – गांवों में बुनियादी सुविधाएं
सितंबर, 2010 – गांवों में शिक्षा

इसके अतिरिक्त ग्रामीण विकास, कृषि, रोजगार व स्वास्थ्य से संबंधित लेख भी इनमें शामिल किए जाएंगे। उपरोक्त विषयों पर सारगर्भित लेख (आम बोलचाल की भाषा में) व फोटो हमें भेजे जा सकते हैं। पत्रिका के प्रकाशन की तिथि आगामी माह से तीस दिन पूर्व होती है। अतः प्रकाशन सामग्री कम से कम 45 दिन पूर्व हमें मिल जानी चाहिए ।

महात्मा गांधी

श्रीमती शीला दीक्षित
मुख्यमंत्री, दिल्ली

शहीदी दिवस

दिल्ली सरकार
टीम दिल्ली – स्वप्न करे साकार

सूचना एवं प्रचार निदेशालय

KH-3/10/4

आर. एन./708/57
डाक–तार पंजीकरण संख्या : डी.एल. (एस)–05/3164/2009–11
आई.एस.एस.एन. 0971–8451, पूर्व भुगतान के बिना आर.एम.एस.
दिल्ली में डाक में डालने के लिए लाइसेंस : यू (डी.एन.)–55/2009–11

R.N./708/57
P&T Regd. No. DL (S)-05/3164/2009-11
ISSN 0971-8451, Licenced under U (DN)-55/2009-11
to Post without pre -payment at R.M.S. Delhi.

प्रकाशक और मुद्रक : वीना जैन, अपर महानिदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली-110003.
मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू-30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया-II, नई दिल्ली-110 020 : वरिष्ठ संपादक : कैलाश चन्द मीना